thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 22 जून 2014 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 22 जून 2014 से 28 जून 2014

आ.कृ. 10 ● वि० सं०–2071 ● वर्ष 79, अंक 113, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 191 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,115 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

वैदिक साधना आश्रम, तपोवन, देहरादून में ग्रीष्मोत्सव व स्वामी दीक्षानन्द स्मृति दिवस

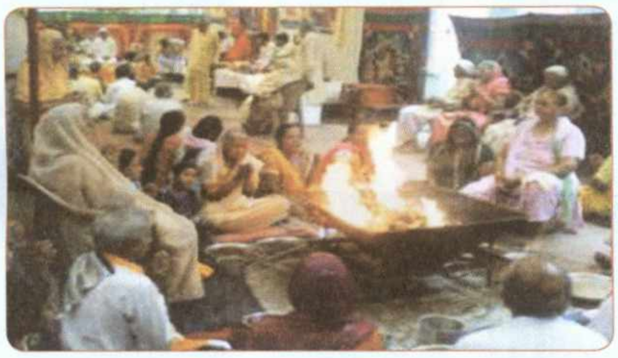

वैदिक साधना आश्रम, तपोवन, देहरादून का पांच दिवसीय ग्रीष्मोत्सव समारोह दिल्ली से आये श्री योगराज जी अरोड़ा, मुख्य अतिथि के सभापतित्व में हर्षोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ। उत्सव का मुख्य आकर्षण स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती स्मृति दिवस का आयोजन भी था। कार्यक्रम प्रातः 6 वृहत् कुण्डों में यजुर्वेद पारायण यज्ञ से आरम्भ हुआ जिसकी पूर्णाहुति के पश्चात भजन, गीत, प्रवचन व उपदेश तथा विद्वानों एवं आर्य समाज के प्रचार–प्रसार से सक्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रमुख व्यक्तियों के अभिनन्दन एवं सम्मान किये जाने तथा श्री मनमोहन कुमार आर्य की पुस्तक **'वेदः सार्वभौम व सर्वमान्य धर्म ग्रन्थ'** के लोकार्पण आदि विविध कार्यक्रमों के रूप में हुआ।

यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात समारोह में पं. रूहेल सिंह जी के सुमधुर भजन हुए। आचार्य विद्यादेव ने बताया कि स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती गौतमनगर दिल्ली में चतुर्वेद पारायण यज्ञ कराते थे तो आचार्य विद्यादेव जी उनके सहयोग के लिए उनके साथ होते थे। **आचार्यजी ने कहा कि दीक्षानन्द जी जब प्रवचन करते थे तो उनके व्यक्तित्व से राजा जनक व महर्षि याज्ञवल्क्य की याद ताजा होती थी।** विद्वान वक्ता ने स्वामी दीक्षानन्द जी से प्रेरणा ग्रहण कर उनके अनुरूप कार्य करने की सलाह दी। समर्पित श्री महेन्द्र आर्य ने कहा कि स्वामी दीक्षानन्द जी ने महामृत्युंजय मन्त्र की बहुत प्रभावशाली व्याख्या की। आर्य जनता उनकी मन्त्र व्याखयाओं व प्रवचनों से बहुत प्रभावित होती थी। छात्रा मनीषा आर्या ने एक विचारोत्तेजक गीत प्रस्तुत किया श्री सुखदेव तपस्वी ने आध्यात्म पर बोलते हुए कहा कि हमें अपने महापुरूषों से प्रेरणा लेनी है। ईश्वर को अपना उपास्य देव बना लेने पर मुनष्य शोक तथा मोह से दूर हो जाता है। इसी के अनन्तर सभा में श्री योगराज अरोड़ा, डॉ. वेद प्रकाश गुप्ता तथा डॉ. अन्नपूर्णा का अभिनन्दन व सम्मान भी किया गया। 104 वर्षीय श्री ठाकुर सिंह नेगी भी आयोजन में पधारे थे।

आयोजन में डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया ने ब्रह्मयज्ञ वा सन्ध्या की चर्चा की और स्वाध्याय से प्राप्त गुणों को अपने आचरण में उतारने की प्रेरणा की। उन्होंने कहा अष्टांगुल समिधा प्रतीक है आठ मंगलों, आयु व प्राण आदि की जो वेदमन्त्र **''स्तुता मया वरदा वेदमाता''**, में निर्दिष्ट हैं। कार्यक्रम में स्थानीय आर्य लेखक श्री मनमोहन कुमार के 14 लेखों के संग्रह *''वेद–सार्वभौम व सर्वमान्य धर्मग्रन्थ''* नाम से प्रकाशित पुस्तक का लोकार्पण किया गया।

द्रोणस्थली की विख्यात आचार्या ने स्वामी दीक्षानन्द जी के कार्यों को स्मरण कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि दी। आचार्य डॉ. धनंजयजी ने स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती को ऋषिकल्प बताया और कहा कि शास्त्रों का संरक्षण करना स्वामीजी महाराज का लक्ष्य होता था।

डी.ए.वी. बनखण्डी ने मनाया स्थापना दिवस

डी.ए.वी. बनखण्डी, तहसील देहरा, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश में डी.ए.वी. स्थापना दिवस बड़े हर्षोलास से मनाया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ विद्यालय के प्रांगण में हवन यज्ञ द्वारा हुआ। सारा वातावरण वैदिक मन्त्रों एवं जयघोषों से गुंजायमान हो उठा। तदोपरान्त प्रधानाचार्य श्रीमती जीवन बाला खोसला जी ने इस दिवस पर महात्मा हंसराज और स्वामी दयानंद जैसी महान विभूतियों की उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुये बताया कि इन महान विभूतियों ने डी.ए.वी. को चलाने के लिए निष्काम भाव से दिन–रात मेहनत की। प्रधानाचार्या जी ने उनके द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उन्होंने यह भी बताया कि डी.ए.वी. मैनेजिंग कमेटी के द्वारा आज डी.ए.वी. स्कूल, कालेज, तकनीकी शिक्षण संस्थाएँ, आर्युवैदिक शैक्षणिक संस्थाएँ, युनिवर्सिटी खोली है। प्राचार्या जी ने बताया, कि डी.ए.वी. विश्वविद्यालय में विभिन्न कोर्स चलाये जा रहे हैं। इस वर्ष से फिजिकल एजुकेशन का कोर्स भी आरम्भ किया जा रहा है। इसमें 100% प्लेसमेन्ट का भी प्रावधान है। इसके साथ ही उन्होंने समस्त डी.ए.वी. परिवार को स्थापना दिवस पर हार्दिक बधाई दी। तदोपरान्त महात्मा हंसराज और स्वामी दयानंद की झांकियों के साथ गाँव में शोभा यात्रा निकाली। बच्चों ने डी.ए.वी. के जयघोषों से सारे वातावरण को भाव–विभोर कर दिया। इस उपलक्ष्य पर बच्चों को हलवा वितरित किया गया। डी.ए.वी. के समस्त परिवार में एक नई उमंग देखी गई।

डी.ए.वी. सोनीपत में ग्यारह कुण्डीय यज्ञ के साथ नव–सत्र का शुभारम्भ

डी.ए.वी. मल्टीपर्पस पब्लिक स्कूल की यज्ञशाला में नव–संवत्सर एवं नव सत्र के शुभारम्भ की अनुगूँज के मध्य हवन क्रिया सम्पन्न कर विद्यालय में नव–सत्र का परम्परा गत तरीके से आरम्भ किया गया। विद्यालय के धर्म शिक्षक श्री सुधांशु मित्र एवं श्री उदय कुमार जी की देख रेख में यह पावन कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। सत्र के प्रथम दिन विद्यालय के सभी विद्यार्थियों व शिक्षकों ने ग्यारह कुण्डीय यज्ञ में उत्साह पूर्वक भाग लिया। नये छात्र–छात्राओं को यजमान बनाया गया जिन्हें प्राचार्य महोदय के साथ यज्ञ करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर पर भजनों की प्रस्तुति के माध्यम से विद्यार्थियों को संदेश दिया गया वहीं धर्म शिक्षक सुधांशु मित्र ने यज्ञ महिमा का बखान करते हुए इस वैदिक परम्परा के औचित्य पर प्रकाश डाला। प्राचार्य श्री वी.के मित्तल ने इस अवसर पर सभी विद्यार्थियों व शिक्षकों को नये सत्र में अच्छे प्रदर्शन की शुभ कामनाएँ दीं।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

hearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 22 जून, 2014 से 28 जून, 2014

हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं

●डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो, महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति चिह्वयाऽदन्, रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्।।

ऋग् १०.४.४

ऋषिः **त्रितः आप्त्यः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**अङ्ग**) हे, (**अमूर**) अमूढ़, (**चिकित्वः**) ज्ञानी, (**अग्ने**) परमेश्वर!, (**मूराः**) मूढ़, (**वयं**) हम, (**महित्वं**) महत्ता को, (**न**) नहीं [जान पाते]।, (**त्वं**) तू, (**वित्से**) जानता है। [हमारा], (**वव्रिः**) रूपवान् आत्मा, (**शये**) सोया पड़ा है, (**जिह्वया**) जिह्वा [आदि इन्द्रियों] से, (**अदन्**) भोग करता हुआ, (**चरति**) विचरता है, (**विश्पतिः सन्**) राजा होता हुआ [भी], (**युवतिं**) प्रकृति–रूप युवति को, (**रेरिह्यते**) अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है।

● हे अग्ने! हे तेजोमय ज्ञानी प्रभु! हम मूढ़ हैं, तुम अमूढ़ हो। हम तो यह भी नहीं जानते कि 'महत्ता' किसका नाम है, महत्त्व प्राप्त करना किसे कहते हैं। हम तो समझते हैं कि सांसारिक दृष्टि से महिमाशाली होना, हाथी, घोड़े, रथ, सेवक आदि का स्वामी हो जाना ही महत्ता है। हमारा तो विचार है कि नचिकेता को यम ने जिस सांसारिक धन–दौलत, पुत्र–पौत्र, भूमि के राज्य आदि सम्पत्ति के प्रलोभन में फँसाना चाहा था, उस सम्पत्ति को पा लेना ही महत्ता है। पर हम मूढ़ अज्ञानियों के ऊपर रहनेवाले अमूढ़ ज्ञानी तुम जानते हो कि सच्ची 'महत्ता' क्या है।

हमारा रूपवान् आत्मा सोया पड़ा है, उसे यही चेतना नहीं है कि मैं किसलिए इस शरीर में आया हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है मुझे किधर जाना है। वह जिह्वा आदि इन्द्रियों से निरन्तर भोगों को भोगने में आसक्त हुआ विचर रहा है और इस भोग भोगने में ही अपने जीवन की इतिश्री मान बैठा है। भगवान् ने उसे 'विश्पति' बनाया है, शरीर–नगरी का राजा बनाया है, जिसमें मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि अनेक प्रजाएँ निवास करती हैं। उसे इस शरीर–नगरी को ईश्वरीय साम्राज्य बनाना चाहिए था, अध्यात्म–साधना द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र बनाना चाहिए था। शरीर–राष्ट्र को भोगों से जर्जर न कर सबल, सप्राण और समनस्क करना चाहिए था। पर धिक्कार है इस आत्मा को! यह तो एक 'युवति' को चाट रहा है, अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है। प्रकृति ही यह युवति है जो नटी बनकर आत्मा को अपने साथ नचा रही है, भोग भुगा रही है। आत्मा प्रकृति को चाट रहा है, प्रकृति आत्मा को चाट रही है। इस प्रकार आत्मा लौकिक भोग–विलासों में आनन्द ले रहा है।

हे मेरे आत्मन्! इस मूढ़ता को त्यागो, अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जगाओ, 'सच्ची महत्ता क्या है' इसे जानो, सोते से उठ खड़े हो, इन्द्रियों के वशीवर्ती न हो, अपितु इन्द्रियों के स्वामी बनो। प्रकृति को न चाटकर परम प्रभु के अमृत–रस का आस्वादन करो। तुम्हारा उद्धार होगा, तुम महिमाशाली बन जाओगे। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

दो रास्ते

● महात्मा आनन्द स्वामी

शरीर की महिमा का वखान करके स्वामी जी ने कहा–यह शरीर ही तो सब कुछ नहीं। इसके अन्दर एक आत्मा रहता है। जिसको जाने बिना मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूर्ण नहीं होता।

यह शरीर केवल एक साधन है उस उद्देश्य (लक्ष्य) को प्राप्त करने के लिए। लेकिन आज दुनिया विरोचन के रास्ते पर चल रही है। कठोपनिषद् के आधार पर इस रास्ते पर चलने वालों को मूर्ख बताया और कहा कि ऐसे लोग विनाश के रास्ते पर चल रह हैं। स्वामी जी ने ऐसे लोगों की भी बात की जो इस दुनिया को धोखा बताते हैं। लेकिन सम्पत्ती और बैंक बैलेन्स जमा करने में किसी से कम नहीं। उन्होंने ऐसे साधुओं और महात्माओं की बात की जो जगत् को तो मिथ्या बताते है लेकिन बड़े–बड़े मठों और आश्रमों के मालिक बने बैठे हैं।

इसके साथ ही दूसरे दिन की कथा आरम्भ हुई और स्वामी जी ने फिर से 'प्रेयमार्ग' और 'शर्यमार्ग' की बात दोहराई और अमरीका आदि देशों और समस्त दुनिया में फैल रह अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार का कारण प्रेयमार्ग को बताया जिस पर दुनिया दौड़ी जा रही है।

लेकिन भर्तृहरि के शब्दों में कहा कि यह दूनिया यूं ही चलती रहेगी, इसके भोगने वाले चले जाएंगे।

अब आगे....

महाराज भर्तृहरि ने यह बात कही उस समय, जब उनकी आँखें खुलीं और उन्हें वैराग्य हुआ। कैसे हुआ यह वैराग्य, इसकी कहानी बहुत मनोरंजक है। भर्तृहरि के राज्य में किसी पुरुष को 'अमर फल' कहीं से मिला–ऐसा फल, जिसे खानेवाला बहुत देर तक जीवित रहे, नवयुवक बना रहे, उसे रोग न हो। उस पुरुष ने सोचा, 'मैं तो साधारण आदमी हूँ। इस फल को खा के बहुत देर जी भी लिया तो इससे लाभ क्या होगा? इसे महाराज भर्तृहरि को देना चाहिए।' फल को लेकर वह महाराज के पास पहुँचा; बोला, ''महाराज! यह 'अमर फल' है, इसे खानेवाला बहुत देर तक जीता रहता है। उसकी आयु बहुत लम्बी हो जाती है। वह सदा नवयुवक रहता है, उसे कोई रोग नहीं होता मैं यह आपके लिए लाया हूँ।''

महाराज ने उसे पारितोषिक दिया। फल लेकर पास रख लिया।

कुछ समय पश्चात् खाने लगे तो विचार आया कि मैं फल को खाकर देर तक जिऊँगा, युवक भी रहूँगा। परन्तु जिस रानी को मैं इतना प्यार करता हूँ वह तो बूढ़ी हो जायेगी, फिर मैं जिऊँगा किसलिए? नहीं! यह फल महारानी को दूँगा ताकि वह सदा युवती बनी रहे।

और उन्होंने वह फल अपनी महारानी को दिया और उसके गुण भी बता दिये।

महारानी ने उस फल को रख लिया। उसकी मित्रता थी अपने मन्त्री के साथ। उसने सोचा– 'मैं इसे खाके क्या करूँगी? जिसे मैं प्यार करती हूँ, उसे दे दूँगी यह।'

और मन्त्री सायं–समय उसके पास आया तो महारानी ने वह फल उसे दिया, उसके गुण बताए और बोली–''देखो, मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ!''

मन्त्री ने फल को अपनी जेब में रख लिया। उसकी मित्रता एक बाजारी औरत (वेश्या) से थी। वह वेश्या उसे बहुत अच्छी लगती थी। रात को वह उस स्त्री के पास गया तो यह फल उसे दे दिया; बोला ''इसे खाकर तुम्हारी आयु लम्बी हो जायेगी। तुम सदा आज की तरह युवा और सुन्दर बनी रहोगी। तुम्हें कभी रोग न होगा। इसको 'अमर फल' कहते हैं।''

उस स्त्री ने फल को लिया, अपने पास रखा। मन्त्री चला गया तो उसने सोचा–मेरा जीवन तो पाप का जीवन है। जितनो अधिक देर जिऊँगी, उतने ज़्यादा पाप करूँगी। घोर नरक जाग उठेगा मेरे लिए। यह फल तो किसी ऐसे महापुरुष को देना चाहिए जो दुनिया का भला करता हो।'– और मन–ही–मन में उसने कहा–'महाराज भर्तृहरि से ज्यादा बड़ा सज्जन और महापुरुष कौन है! वह सबका भला करते है, सारी प्रजा को सुखी रखते हैं, सबो न्याय देते हैं। उन्हीं को यह फल दूँगी मैं।'

और दूसरे दिन वह महाराज के दरबार में पहुँची और हाथ जोड़कर बोली–''महाराज, यह 'अमर फल' है, इसको खानेवाले की आयु बहुत लम्बी हो जाती है। वह सदा युवा रहता है, उसे रोग नहीं होता। यह मैं आपके लिए लाई हूँ।''

महाराज भर्तृहरि ने उस फल को

thearyasamaj.org

देखा, पहचाना; आश्चर्य से बोले, ''यह फल तुम्हें कहाँ से मिला?''

वेश्या ने कहा–''कहीं से मिल गया, महाराज! यह आपके योग्य है, आप इसके योग्य हैं।''

महाराज बोले–''सुनो! यह चोरी की वस्तु है। सच बोलो, कहाँ से मिला तुम्हें यह फल? नहीं तो तुम्हें चोरी के अभियोग में बन्दी बना लिया जायेगा।

उसने डरी हुई आवाज में कहा–''महाराज! मैं नहीं जानती कि यह चोरी की वस्तु है या नहीं यह फल तो मुझे आपके मन्त्री जी ने दिया था।''

महाराज ने मन्त्री को बुलाया। गर्जती आवाज में बोले, ''यह फल जो तुमने इस स्त्री को दिया, तुम्हारे पास कैसे आया?''

मन्त्री ने सिर झुका के काँपती आवाज में कहा– ''यह न पूछिये महाराज! मैं बता नहीं सकता।''

महाराज तड़पकर बोले–नहीं बता सकते तो सुनो, तुम्हारी गर्दन उड़ा दी जायेगी। कैसे आया तुम्हारे पास?

मन्त्री ने और भी झुककर कहा – ''मुझे यह आपकी महारानी ने दिया था।''

और भर्तृहरि की आँखें खुलीं। दुःख के साथ उन्होंने कहा–''जिसे मैं प्यार करता हूँ वह किसी दूसरे से प्यार करती है। जिसे वह प्यार करती है वह किसी और को चाहता है। और जिसे वह चाहता है वह किसी और को। कैसी दुनिया है यह?'' और वैराग्य के आँसू बहाते हुए वे बोले–

''धिक् तं चतां च मदनं च इमां च मां च।''

धिक्कार है उस पुरुष को , उस स्त्री को, उस वासना को जो सबको अन्धा किये देती है! धिक्कार है इन सबको और धिक्कार है मुझको भी।''

यह है 'प्रेय मार्ग' का नक्शा! महाराज भर्तृहरि ने इसकी वास्तविकता को समझा तो उनकी आँखे खुलीं। उन्हें वैराग्य हो गया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि 'श्रेय मार्ग' में सब दुःख–ही–दुःख हैं, कष्ट–क्लेश, मुसीबतें व विपदाएँ–चिन्ताएँ ही हैं, और सुख नाम की कोई वस्तु नहीं।

यह 'श्रेय मार्ग' है क्या? आप रोगी हैं। वैद्य, हकीम, डॉक्टर के पास जाते हैं। वह आपको इन्जैक्शन लगाता है। इस इन्जैक्शन के लगते समय आपको कष्ट होता है। वह आपको कष्ट होता है। आप इस कष्ट को इसलिए सहन करते हैं कि आपको इसका अन्त पता है। आप डॉक्टर को फीस भी देते हैं, इन्जैक्शन के दर्द और कड़वी दवाई का कष्ट भी सहन करते हैं क्योंकि आपको पता है कि ऐसा करने से आपका स्वास्थ्य अच्छा हो जायेगा; आपका रोग दूर हो जायेगा; आप अधिक सुख से, अधिक आराम से रह सकेंगे। यह है। 'श्रेय मार्ग'। इसमें पहले कष्ट होता है, बाद में सुख और बहुत लम्बा सुख, बहुत आनन्द देने वाला सुख। 'प्रेय मार्ग का सुख थोडी देर हता है इसके बाद लम्बे दुःख का द्वार खोल देता है। 'श्रेय मार्ग' पर चलने वाले को पहले कष्टों, क्लेशों और मुसीबतों से गुज़रना पड़ता है, तब उसके लिए असीम आनन्द का द्वार खुल जाता है।

इन दो रास्तों का वर्णन मैं कल कर रहा था। परन्तु जैसा मैंने कहा, 'श्रेय मार्ग' में केवल दुःख नहीं, सुख भी है। केवल इस मार्ग के अन्त में नहीं, इससे पहले भी सुख होता है। एक मनुष्य आम का पेड़ लगाता है। उसे लगाने में , सींचने में, सर्दी और गर्मी से उसको बचाने में, उसे खाद देने में , उसे कीड़ों और पक्षियों से सुरक्षित रखने में कष्ट होता है अवश्य। वह पेड़ लगाता है इसलिए कि उसे खाने को आम मिलेंगे, परन्तु ये आम बहुत जल्दी तो मिलते नहीं। आम लगने से पेड़ बड़ा होता है, उसकी छाया उसको मिलती है, उसकी सुगन्धि मिलती है। यह सब कुछ 'श्रेय मार्ग' पर चलते हुए होता है। अन्त में मीठे–रसीले आम भी मिलते हैं। 'श्रेय मार्ग' पर चलने वाले को आनन्द देर से मिलेगा, परन्तु एक सुखदायी छाया पहले ही मिल जायेगी–ऐसी छाया जो उसके लिए कष्ट को भी सुखदायक बना देगी।

अब प्रश्न यह है कि 'श्रेय मार्ग' पर चलने की तैयारी कैसे करें? किस प्रकार मन के अन्दर यह वृत्ति, यह रुचि पैदा करें कि वह 'श्रेय–मार्ग' की ओर ही चले, 'प्रेय मार्ग' की ओर जाये नहीं? सामवेद में इसका उत्तर देते हुए बताया गया है–

सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माण च बृहस्पतिम्।।

इस मन्त्र का सबसे प्रथम शब्द 'सोम' है, परन्तु 'सोम' का अर्थ क्या है?

मनुष्य एक यात्री है। वह पैदा होता है तो अपने जीवन की यात्रा आरम्भ करता है। कई मञ्जिलों, कई दिशाओं, कई निर्जन वनों, कई हरे भरे मैदानों, कई गर्जती नदियों, कई सुनसान रेगिस्तानों, कई पहाड़ों, कई नगरों–ग्रामों से गुजरता है। कहीं बाजे बज रहे हैं, कहीं चीखें गूँज रही हैं, कहीं मुस्कराहटें हैं, कहीं आँसू। कभी खुशी के फूल खिल उठते हैं। कभी चिन्ता के बादल उमड़ आते हैं। कहीं प्यार है, कहीं घृणा; कहीं मित्रता, कहीं शत्रुता; कहीं मान, कहीं अपमान; कहीं चहचहाते पक्षी, कहीं हिंसक पशु। ऐसी है यह दुनिया। कहीं सफलता की फूल–मालाएँ, कहीं असफलता के काँटों का ताज। इस यात्रा में मनुष्य आगे बढ़े तो कैसे?

सोमं अनु आरभामहे।

सोम के साथ अपने जीवन का आरम्भ करके। 'सोम' को संस्कृत में कहते हैं 'सौम्यता' का अर्थ है नम्रता, शीलता, मधुरता मीठा बोलना, पवित्र व्यवहार, मीठा स्वभाव, भगवान के लिए प्रेमभक्ति। ये सब–के–सब 'सोम' हैं। इनसे जो आनन्द मनुष्य को मिलता है उसी को 'सोम रस' कहते हैं।

लेने को हरिनाम है, देने को कुछ दान।
तारन को है नम्रता, डूबन को अभिमान।।

नम्रता मनुष्य का आभूषण है। जो लोग अकड़े रहते हैं हर समय, उनकी एक–न–एक दिन गर्दन टूटती है जरूर। तेज तूफानी आँधी चल रही हो तो बड़े–बड़े वृक्ष चरमराकर टूट जाते हैं। परन्तु छोटे–छोटे पौधे, घास के तिनके बच जाते हैं। इसलिए कि उनमें नम्रता है। तीव्र झोंके आते हैं तो वे झुक जाते हैं। उनके समाप्त होते ही फिर खड़े हो जाते हैं। अकड़ने वाले समाप्त होते हैं झुकनेवाले नहीं। रावण अकड़ा, उसकी गर्दन कट गई। औरंगजेब अकड़ा, उसकी आँखों के सामने उसका साम्राज्य तहस–नहस होने लगा। हिटलर अकड़ा तो उसका भी यही हाल हुआ।

गीता में भगवान् कृष्ण ने देवताओं और राक्षसों को 'दैवी' और 'आसुरी' सम्पदा के लक्षण अर्जुन को बताए तो दैवी सम्पदा के सम्बन्ध में कहा–

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।

'हे अर्जुन! सुन मैं तुझे बताता हूँ कि जिन लोगों में 'दैवी सम्पदा' है, देवताओं जैसे गुण हैं, उनमें क्या दिखाई देता है। सबसे पहले तेज, मुखमण्डल पर खेलता हुआ एक तेज जो दूसरों को हिप्नोटाइज (वशीभूत) कर लेता है, उन्हें अपनी ओर खिंचता है, बिना कुछ कहे ही उनके मन में अपने लिए प्रतिष्ठा और प्यार पैदा कर देता है।'

भगवान बुद्ध जा रहे थे, एक नगर से एक और नगर को। रास्ते में एक जंगल पड़ता था। नगरवालों ने कहा– ''महाराज! इस जंगल में न जाइए। इसके अन्दर एक भयानक डाकू रहता है– अंगुलीमाल, जो यात्रियों का सब–कुछ लूटकर उन्हें कत्ल कर देता है। उनकी लाशों को हिंसक पशुओं के सामने फैंक देता है। हर लाश से एक अंगुली काटकर अपने गले में अपनी माला के अन्दर पिरो लेता है। बहुत भयानक है वह! आप जंगल के अन्दर जाने की बजाय इसका चक्कर काटकर दूसरे रास्ते से जाइए।'' भगवान् बुद्ध ने हँसते हुए कहा–

''ऐसा मनुष्य रहता है इस जंगल में, तब तो मुझे जंगल से ही जाना चाहिए।'' और चल पड़े आगे। जंगल के घने भाग में पहुँचे तो अंगुलीमाल ने उन्हें देखा। उसे आश्चर्य हुआ कि यह कौन व्यक्ति है जो इतनी निर्भयता से चला आता है? आगे बढ़कर उसने कहा, ''ठहरो!'' भगवान! बुद्ध हँसते हुए खड़े हो गए; बोले–''तुम ही अंगुलीमाल हो? लोगों की अंगुलियाँ काटकर उनकी माला बनाकर पहनते हो?'' अंगुलीमाल ने गर्जकर कहा–हाँ! मैं ही अंगुलीमाल हूँ। जब तुमने मेरा नाम सुना और यह भी जाना कि मैं क्या करता हूँ, फिर इस जंगल में क्यों आ गए?'' भगवान बुद्ध ने मुस्कराते हुए कहा– ''तुम्हें देखने के लिए मेरे भाई! तुम्हें अपना प्यार देनेके लिए, आशीर्वाद देने के लिए।'' अंगुलीमाल आश्चर्य से बोला–परन्तु, मैं एक डाकू, कातिल, खूनी, राक्षस।'' भगवान् बुद्ध ने उसके पास जाकर मुस्कराते हुए कहा–''नहीं, तुम मनुष्य हो अपने–आप से भूले हुए, सच्चाई को भूले हुए। मैं गौतम बुद्ध हूँ। आओ! मैं तुम्हें बताऊँगा कि सच्चाई क्या है।'' और वह अंगुलीमाल बच्चे की तरह रोता हुआ उनके चरणों में गिर पड़ा। सिसकता हुआ बोला, ''मुझे बचाओं भगवन्! मुझे बचाओं!

यह है तेज का असर!

श्री गुरु नानकदेव जी महाराज भी एक जंगल मे जा रहे थे। उस जंगल में सज्जन नाम का एक ठग रहता था। एक सराय उसने बना रखी थी। यात्री उस सराय में आकर ठहरते थे। सज्जन उनकी आवभगत करता, उनको खिलाता–पिलाता। रात के समय वे सो जाते तो उनकी गर्दन पर छुरी फेर देता, उनका सब–कुछ लूट लेता। गुरु महाराज भी उस सराय के पास पहुँचे। भाई बाला उनके साथ था। रात हो रही थी। गुरु जी ने कहा– ''बाला! आज रात हम इसी सराय में ठहरेंगे।'' ठहर गए दोनों। सज्जन ने उन्हें अच्छी तरह खिलाया–पिलाया। सोने को जगह बता दी। दिल–ही–दिल में सोचा कि ये दोनों धनाढ्य व्यक्ति प्रतीत होते हैं। आज बहुत माल हाथ लगेगा। श्री गुरु नानकदेव जी महाराज पहले प्रभु के प्यार से भरी वाणी गाते रहे। फिर उसी प्यार में आखें मूँदकर अपने प्यारे प्रीतम के प्यार में मग्न हो गए। बाला सो गया। गुरु जी वैसे ही बैठे रहे। सज्जन ने उनकी ओर देखा तो उसके दिल मैं बैठा राक्षस काँप उठा। आत्मा रो उठी। दिल के अन्दर से किसी ने कहा–'इस ज्योति को देख भाग्यहीन! यह साधारण मनुष्य नहीं, यह तो कोई देवता है।' परन्तु मन के अन्दर बैठे राक्षस ने कहा–'कोई भी हो, तू ठग है, आगे बढ़, अपना काम कर! इसकी आँखें बन्द हैं। परन्तु गुरु जी महाराज की आँखें बन्द होने पर भी उनके मुख–मण्डल की आत्मिक ज्योति सज्जन को ऐसी मालूम (प्रतीत) हुई, जैसे उसे बाँधे लेती हो। उसका शरीर काँपने लगा, हाथ काँपने लगे, छुरी परे जा गिरी आर वह गुरु महाराज के चरणों में गिरकर पुकार उठा–''मुझे बचाइए महाराज! मुझे बचाइए!'' गुरु जी ने आँखें खोलकर उसकी ओर देखा। उसकी कहानी सुनी। हँसते हुए बोले–''तू तो सज्जन है, फिर यह सब–कुछ कैसे करता रहा? अब जिस–जिसका जो कुछ छीना है वह सब दे, तभी तेरे मन को शान्ति मिलेगी।''

यह है तेज का प्रभाव

शेष अगले अंक में....

thearyasamaj.org

शिक्षा समस्या : वैदिक समाधान

ब्रह्मचारी सत्यनिष्ठा से मृत्युविजयी होते हैं

● डॉ. अशोक आर्य

ब्रह्मचारी अपने तप के बल पर सत्यनिष्ठ होकर सत्यनिष्ठ तथा ज्ञानी व्यक्ति मृत्यु पर विजय पाने में सक्षम होते हैं। ब्रह्मचारी पर प्रकाश डालते हुए इस तथ्य को अथर्ववेद के अध्याय 11 सूक्त 15 के मन्त्र संख्या 19 में इस प्रकार उपदेश किया गया है:–

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वःराभरत।।
अर्थवेद 11.15.19।।

मन्त्र उपदेश करते हुए बता रहा है कि ज्ञानी लोग, जिन्हें हम सत्यनिष्ठ लोग भी कह सकते हैं, ब्रह्मचर्य और तप, के द्वारा मृत्यु पर विजय पाते हैं। इस वाक्य में ब्रह्मचर्य और तप, इन दो शब्दों पर विशेष बल दिया गया है। प्रथम शब्द ब्रह्मचर्य का प्रयोग किया गया है। इसलिए आओ हम सर्वप्रथम जानने का यत्न करें कि ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं।

ब्रह्मचर्य अथवा ब्रह्मचारी

ब्रह्म का अर्थ है ज्ञान, परमपिता परमात्मा का दिया गया ज्ञान। हम जानते हैं कि जो परमपिता परमात्मा ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए इस सृष्टि के आरम्भ में दिया था, वह ज्ञान था, जो प्राणी के कल्याण के लिए दिया गया था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि क्योंकि यह ज्ञान सृष्टि के आदि में दिया गया था, इसलिए इस ज्ञान का इस सृष्टि के सब ज्ञानों में सब से प्राचीन होना भी आवश्यक है तथा सृष्टि के सब ज्ञानों का स्रोत भी यह ज्ञान ही है। इस मानक के अनुसार जब हम प्राचीनतम ज्ञान की खोज करते हैं। तो हम पाते हैं कि इस सृष्टि के प्राचीनतम ज्ञान का नाम वेद है। वेद से प्राचीन पुस्तक इस सृष्टि में अन्य कोई नहीं होने के कारण हम वेद को ही प्राचीनतम ज्ञान मानते हैं। इस सम्बन्ध में ईसाई मत का धर्म ग्रन्थ बाईबल भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहता है कि इस सृष्टि के आरम्भ में शब्द था। यह शब्द प्रभु का दिया हुआ था। यह शब्द प्रभु का आदेश था। यह शब्द सदा रहने वाला होने के कारण कभी नष्ट नहीं होता। जब हम बाईबल के इस सन्देश का विश्लेषण करते हैं तो हम पाते हैं कि यह भी वेद रूपी ज्ञान की ही चर्चा कर रहा है। यह शब्द अर्थात् यह ज्ञान रूपी बल, यह परमपिता परमात्मा का दिया हुआ आदि ज्ञान ही वेद है। अतः ब्रह्म शब्द का अर्थ हुआ वेद।

ब्रह्म का अर्थ भली–भाँती जान लेने के पश्चात हम इस स्थिति में आ गए हैं कि इस के दूसरे भाग चारी का भी कुछ विश्लेषण कर सकें। ब्रह्म का अर्थ तो है ज्ञान, यह हमने जान लिया। इस के दूसरे भाग चारी या चर्य का अर्थ है विचरण करने वाला अर्थात् जो ब्रह्म में अर्थात् ईश्वर के दिए हुए वेद ज्ञान में विचरण करे अथवा इस ज्ञान को पाने का, जानने का यत्न करे उसे ब्रह्मचारी कहते हैं।

भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार जिस बालक को पिता यज्ञोपवीत संस्कार करके बाईस प्रकार के उपदेश देकर वेदादि शास्त्रों की शिक्षा पाने के लिए घर से विदा कर गुरुकुल में गुरु चरणों में भेज देता था, उसे ब्रह्मचारी कहा जाता था तथा आज भी गुरुकुल में शिक्षा पाने वाले बालक को ब्रह्मचारी के नाम से ही जाना जाता है।

तप

ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में जान लेने के पश्चात आता है शब्द तप, जिसके सम्बन्ध में हमें जानकारी होना आवश्यक है। इस शब्द को समझने के पश्चात ही हम इस मन्त्र के अगले भाग को समझ पाने के योग्य बन सकेंगे। तप शब्द अपने आप ही अपनी व्याख्या करता हुआ दिखायी देता है। तप के सम्बन्ध में हम जानते हैं कि तपाने को ही तप के नाम से जाना जाता है। किसे तपायें कि उसे तप कहा जावे। स्पष्ट है ब्रह्मचर्य से सम्बन्ध रखने वाले शब्द तप का भाव है ब्रह्मचारी के लिए तप। ब्रह्मचारी के लिए तप से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जो बालक गुरुकुल में प्रभु के दिए हुए ज्ञान को पाने गया है वह कठोर तपश्चर्या से ही इस ज्ञान को पा सकता है। जब तक वह अपने शरीर को योग, आसन, प्राणायाम आदि साधनों से तपाता नहीं, अनेक प्रकार के कष्ट सहन नहीं करता, तब वह इस शिक्षा को भली प्रकार पाने का सामर्थ्य नहीं रखता। इसलिए यह आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य में रहते हुए उसे अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना होता है, अनेक विध पुरुषार्थ करना होता है, प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर साधना करना होता है। गुरु की सेवा करना भी उसके लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार के साधनापूर्ण जीवन में रहते हुए अंत में वह प्रभु का दिया हुआ, जो हमारे लिए कल्याणकारी ज्ञान वेद के रूप में जाना जाता है, उसे यह ब्रह्मचारी पा सकता है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य व तप से जो लोग सत्यनिष्ठ अर्थात सत्य में अगाध निष्ठा रखने वाले तथा ज्ञान के भंडारी लोग होते हैं। इस प्रकार के लोग मृत्यु से कभी भयभीत नहीं होते। यह लोग मृत्यु को वरदान मानते हैं तथा मृत्यु पर विजय पा लेते हैं। ऐसे लोगों को मृत्यु विजयी कहते हैं। इस प्रकार जो जीवात्मा है, वह ब्रह्मचर्य में विचरण करते हुए सब प्रकार के इन्द्रियों के सुखों को प्राप्त कर सुखों से परिपूर्ण हो जाता है।

यह ब्रह्मचर्य ही है, जिससे प्राण, अपान व्यानादि अर्थात हमारे श्वास लेने, श्वास छोड़ने तथा श्वास बीच में ही रोक लेने की क्रिया के साथ ही साथ वाणी, मन, हृदय, ज्ञान मेधा आदि अर्थात हम उत्तम वाणी वाले बनते हैं, हमारा मन साफ़ व दूसरों का सहायक बनता है, हृदय में सदा उत्तम विचार ही आते हैं। हमारा ज्ञान भी ऐसा पवित्र होता है कि इसके प्रयोग से हममें विश्व के कल्याण की शक्ति आ जाती है। हमारी मेधा बुद्धि भी अच्छे बुरे में अंतर करने में सक्षम हो कर जन कल्याण में लग जाती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य के कारण हमने जिस ज्ञान को प्राप्त किया है, उस ज्ञान का हम केवल अपने हित के लिए ही प्रयोग नहीं करते अपितु दूसरों के हित को भी अपना ही हित मानते हुए उनमें भी बाँटते हैं।

इस सब से विश्व के जितने भी दिव्य गुण हैं, उन सब का ब्रह्मचारी के अंदर निवास हो जाता है। ब्रह्मचारी दिव्यगुणों का भंडारी बन जाता है। वह दिव्यगुणों का स्वामी हो जाता है। यह दिव्य गुण ही हैं, जिन्हें पाने के लिए ऋषि लोग वर्षों तक जंगलों की खाक छानते हैं तो भी वह उन्हें पाने में सफल नहीं होते। यह सब गुण ब्रह्मचारी के तप के परिणामस्वरूप मिल जाते हैं। इस प्रकार वह ब्रह्मचारी प्रकाशन परमेश्वर के ज्ञान वेद को अपने में धारण करने में सफल होता है।

आज की शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यह शिक्षा वेदाधारित नहीं है किन्तु तो भी आज का विद्यार्थी, जो ब्रह्मचारी के गुणों से संपन्न नहीं है, को भी अत्यधिक पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है शिक्षा को पाने के लिए, जिस के परिमाणस्वरूप वह कुछ सीमा तक सुशिक्षा पाने में सफल होता है किन्तु इस समस्या का समाधान यह ही है कि आज भी प्राचीन शिक्षा पद्धति को अपनाए बिना विश्व का कल्याण संभव नहीं। यदि कोई कहे कि विज्ञान आदि को जानने के लिए आधुनिक पद्धति की शिक्षा आवश्यक है, अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। यह भी उनका भ्रम मात्र ही है। जिस लक्ष्मण रेखा को सीता जी की रक्षा के लिए लगाया था, वैसा बारुद अथवा वैसा शसस्त्र आज तक इस सभ्य जगत का विज्ञान नहीं बना सका जो एक ओर मार करे किन्तु दूसरी और रहने वाले को सुरक्षित रखे। हमारे आज के सब शस्त्र सब ओर से समान मार करते है तथा ऐसा करते हुए यह शत्रु और मित्र में भेद नहीं करते किन्तु लक्ष्मण रेखा रूपी शस्त्र शत्रु और मित्र में अंतर को समझते थे। अतः इस समस्या का एकमात्र समाधान है प्राचीन शिक्षा पद्धति, जिसे अपना कर ही हम अपने खोये हुए वैभव को पा सकते हैं।

108 शिप्रा अपार्टमेंन्ट,
कौशाम्बी 201010 गाजियाबाद

चुनाव समाचार

आर्य समाज पटेल नगर/सैक्टर–15–II, गुडगांव

प्रधान	ईश्वर सिंह दधिया
मन्त्राणी	श्रीमति निर्मला देवी
उप–प्रधान	श्री भुवेश त्यागी
कोषाध्यक्ष	श्री वेद प्रकाश मनचन्दा

आर्य समाज मयूर विहार –2, दिल्ली–91

प्रधान	श्री चरनजीत लाल मोहन
मन्त्री	श्री ओम प्रकाश पाण्डेय
कोषाध्यक्ष	श्री लक्ष्मी चन्द गुप्ता

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–आत्मा हाड़–मांस से बने इस शरीर में रहना क्यों पसंद करती है।

समाधान – आत्मा को अविद्या के कारण यह हाड़–मांस का शरीर बहुत अच्छा लगता है। जब उसे समझ में आ जाता है तो उसकी अविद्या दूर होनी शुरु हो जाती है। जब अविद्या दूर हो जाती है तो आत्मा इस शरीर में नहीं रहना चाहती। प्रश्न उठता है कि कहाँ जाना चाहती है? उत्तर यह है, फिर 'मोक्ष' में जाना चाहती है।

संपादकीय टिप्पणी – अठारहवें कठिंन प्रश्न और उसके उत्तर को समग्र रूप से समझने के लिए इस संसार में मौजूदा शरीर, दौलत, शोहरत, परिधान और कोठी आदि सब चीजों को विद्या–अविद्या के दृष्टिकोण से देखना पड़ेगा। इन्हें विवेकपूर्वक देखने से यह ज्ञात होगा कि –तकरीबन सब के सब लोग इन शरीर, शोहरत आदि चीजों का हासिल करने के पीछे लगे हुए हैं, और इनके पीछे लगने की वजह से इन व्यक्तियों के पीछे दु:ख लगा हुआ है। और एक दु:ख नहीं, बल्कि एक के पीछे दूसरा, और दूसरे के पीछे तीसरा दु:ख लगा हुआ है। आइए, इसे समझें–

● **पहली बात यह है कि – प्रथम दु:ख तो इस 'अनित्य–संसार' के 'अस्थायी' रहने का 'दु:ख'** है। वस्तुतः यह अपनी हरेक पसंदीदा चीजों के **'बदलने'** और **'न रहने का'** दु:ख है।

इसके बाद इन **'अस्थायी–चीजों' से 'लगातार' सुख न मिलने का 'दुख'** और लगातार सुख लेने के प्रयास में लगे रहने पर उनसे **'ऊबने' का 'दु:ख'** है।

● **दूसरी बात यह है कि** – सभी सांसारिक वस्तुओं को कमाने उन्हें खर्च करने (भोगने), उनकी रक्षा करने और उनकी बढ़ोत्तरी करने का जो काम किया जाता है, वह मेहनत भी कष्टदायक होती है। **'मेहनत' करने से 'कष्ट'** मिलता है। मेहनत चाहे शारीरिक हो या मानसिक, सबको कष्ट देती है। इसी तरह सांसारिक वस्तुओं की **'अशुद्धता' के कारण 'दु:ख'** मिलता है। जैसे–मनुय शरीर के पसीने, मल आदि से निकली बदबू आदमी को दु:खी कर देती है।

सुखदायक वस्तुओं का भोग करने से रोग, द्वेष और अभिनिवेश नामक 'क्लेश' पैदा होते हैं। और उनसे फिर हिंसा, झूठ आदि वितर्क पैदा होते हैं। व्यक्ति इन्हें 'हितकर' मानकर ग्रहण करता है।

इन राग, द्वेषादि क्लेशों से और हिंसादि वितर्कों से उसे 'हानि' होती है। उस हानि से उसे इस जीवन में 'दु:ख' मिलता है। साथ ही उनसे जाति, आयु और भोग रूपी 'दु:ख' मिलता है। जाति यानी संसार में 'जन्म' लेने से फिर दोबारा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक 'दु:ख' मिलता है। यह सारे दु:ख संसार की, सांसारिक वस्तुओं की 'अशुद्धता' और 'अहितकरता' के कारण से मिलने वाले दु:ख हैं।

● तीसरी बात यह है कि–अर्जित किए गए अनित्य और अशुद्ध सांसारिक भोगों में सुख लेने के कारण भोगों में अतृप्ति होती है। इस **'अतृप्ति' से 'दु:ख'** महसूस होता है। फिर इस अतृप्ति के कारण उस भोग को और ज्यादा मात्रा में भोगने की इच्छा होती है। उस **'बढी हुई इच्छा' की मौजूदगी से भी 'दु:ख'** प्राप्त होता है, और उस बढ़ी हुई इच्छा की **'पूर्ति न होने से' भी** 'दु:ख'। यह दु:ख 'परिणाम दु:ख' कहलाता है। इन सुखदायक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहने पर भी कई बार उनकी प्राप्ति में कोई न कोई बाधा आ जाती है तो इस **'अड़ंगे' के आने पर व्यक्ति 'दु:खी'** हो जाता है। यह दु:ख 'ताप दु:ख' कहलाता है।

चूंकि सारा संसार अनित्य है, इसलिए संसार की कोई भी चीज चाहे वह सजीव हो या निर्जीव या दूसरे से बने हमारे संबंध, चाहे वे पारिवारिक हों या व्यावसायिक, वे सब के सब स्थायी नहीं हैं। इसलिए हमें जो सुख और सुख–साधन पहली बार मिला, वही आगे भी मिले, यह जरूरी नहीं है। **'सुख के दोबारा न मिलने' पर 'दु:ख'** यानी उससे वंचित होने पर फिर दु:ख मिलता है। इस प्रकार के दु:ख को 'संस्कार दु:ख' कहते हैं।

एक वस्तु के प्रति परस्पर दो तरह के विचार मन पैदा होने के कारण, **'विरोधी विचारों की वजह से अर्न्तद्वन्द्व या मतभिन्नता होने से हमें 'दु:ख'** होता है। इसे 'गुण वृत्ति विरोध' दु:ख कहते हैं। यह तीसरे प्रकार की अविद्या यानी 'दु:ख को सुख मानने' से प्राप्त होने वाले दु:ख हैं।

चौथी बात यह है कि–जो पत्नी, पुत्र, रिश्तेदार, धन, सम्मान, मकान आदि वस्तुएं हमारी आत्मा का हिस्सा नहीं हैं, उन्हें अपनी आत्मा का हिस्सा मानकर, उनके नष्ट होने पर व्यक्ति अपने आत्मा को 'नष्ट' व 'लुटा–पिटा' मानकर 'दु:खी' होता रहता है। इतना ही नहीं, अपने माने गये इन पुत्र आदि संबंधियों के पुत्र, पौत्रों, और उनके पास में मौजूद धन सम्पत्ति और मान–प्रतिष्ठा आदि को भी वह अपना मानता है। जब उनके पुत्र, धन आदि नष्ट होते हैं तो उनके साधनों को अपने साधन मानने वाला वह व्यक्ति 'पराए के लुटने' को अपना लुटना मानकर, 'दु:ख'मनाता है। यह चौथी अविद्या यानी ' अनात्मा को आत्मा' मानने के कारण उत्पन्न होने वाला दु:ख है।

● पाँचवी बात यह है कि:– जीवात्मा 'अविकारी' यानी 'अपरिणामी' होने से उसकी मूल स्थिति में कभी भी कोई 'बदलाब नहीं' होता है। आत्मा तो दूर से ही सुख व सुखदायक वस्तु को देखता भर है, उसका ज्ञान–मात्र प्राप्त करता रहता है, पर वह उसे अपने अन्दर बिल्कुल भी नहीं लेता है। इस प्रकार जो भी सुखदायक वस्तु का हम सेवन कर रहे हैं, वह वस्तु तो ज्ञान–इन्द्रिय तक, और उस वस्तु का ज्ञान केवल बुद्धि तक आकर के बाहर ही वहीं पर रुक जायेगा। वहाँ से आत्मा के भीतर जाकर नहीं घुसेगा। आत्मा केवल उसे दूर से देखेगा।

यह जो दूध, घी, मिठाई, फल आदि हम खा रहे हैं। इनका कुछ भी हिस्सा हमारी आत्मा में नहीं जाता है। सुख का कोई साधन या उससे मिलने वाला सुख आत्मा में कुछ भी संग्रह नहीं होता है। अब चाहे एक किलो दूध पी लो या आधा किलो, एक गुलाबजामुन खा लो या फिर दस खा लो, सुन्दर रूप देख लो, पसंदीदा गाना सुन लो, आत्मा में तो कुछ नहीं घुसने वाला। इनको खाने–देखने से आत्मा जरा भी मोटी–ताजी नहीं होगी।

अगर वह सुखद वस्तु या उसका सुख आत्मा से जुड़ जाता तो आत्मा में सदा आनंद बना रहता, पर वह पदार्थ आत्मा में नहीं घुसता, मिश्रित नहीं होता। यही वजह है कि सुखदायक वस्तु से हमारा सम्पर्क खत्म होते ही उससे मिलने वाला आनंद भी समाप्त हो जाता है।

लौकिक सुख–दु:ख, हानि–लाभ जो होते हैं, वे हमारी बुद्धि में घटित (चित्रित) हो रहे हैं। लेकिन व्यक्ति उसे अपनी आत्मा में घटित मानता है। इसलिए सुखद विषय–वस्तु में मौजूद सारे गुण उसे अपने लगने लगते हैं। इसलिए व्यक्ति जब खीर आदि पदार्थों को खायेगा तो महसूस करेगा कि यह जो खीर वह खा रहा है, वह मेरी आत्मा में प्रविष्ट हो रहा है। वह मानने लगता है कि–इसका सुख मेरे अन्दर यानी मेरी आत्मा के अन्दर पहुँचकर, मेरे अन्दर ही मुझे अनुभव हो रहा है। सोचता है–यह सुख मेरे भीतर ही है। तब वह बुद्धि में सुख आया न बोलकर, आत्मा में सुख आया बोलता है। इस प्रकार वह **बुद्धि के विकार को आत्मा का विकार मान कर झूठ–मूठ सुखी–दु: खी होकर अपनी सारी जिन्दगी बिता देता है।**

मरते समय जब शरीर और सुख–साधन छूट कर आत्मा से अलग हो जाते हैं उसे पता चलता है कि ''सुख और सुख–साधनों के घटने–बढ़ने से मैं आत्मा छोटा–बड़ा, सुखी नहीं होता हूँ ''इस प्रकार संसार के चक्कर में पड़कर जीवात्मा सब तरफ से लुट–पिटकर लक्कड़ जैसा हतप्रभ खड़ा रह जाता है, भौंचक्का रह जाता है।

जीवन की ढलती शाम

जीवन की है ढलती शाम, हे प्रभु अब दो यह वरदान।
संसारी संघर्ष न आये, राग द्वेष अब नहीं सताये,
धरती के या आसमान के, सभी देवता दया दिखायें,
वैर–विरोध मिटे सब के मन, मिले अभय अक्षर वरदान।।

सभी स्नेह से भरे हृदय हों, सभी सुखद हो और सदय हो,
रहे नहीं मन में अभिमान, केवल भाव रहे कल्याण।।

भीमाशंकर साखरे, आलंद

hearyasamaj.org

इन्द्र का सोमपान

● महात्मा चैतन्यमुनि

डॉ कृष्णलालजी अपने एक लेख में लिखते हैं। 'महर्षि दयानन्द ने अपने भाष्यों में सो का निर्वचन मुख्य रूप से तीन धातुओं से किया है। सु (पु षुञ् अभिषवे स्वादि.) से प्रायः औषध, सोमलता के समान आह्लादक आसव, रोगनाशक महोषधि (सोम) का रस, सोमलता के समान सब रोगों (कष्टों) के नाशक राजादि अर्थ सोम के लिए किए गए हैं (**वैद्यकशिल्पक्रियाया संसाधित ओषधीरसः**ऋ.147–1, **सोमवल्लयादि निष्पन्नमाह्लादकमासवविशेषं** वा.सं. 8–10, **सर्वरोगनाशकं महौषधिरसम्–द्वितीया** (ऋ. 3–51–6, **सोमवल्लीव सर्वरोगविनाशक** (राजन्) वा.सं. 34–22) यास्क ने भी इसी धातु से निर्वचन करते हुए इसका अर्थ औषधि (सोम) किया है। (**औषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति।** नि. 11–2) । सू (षु प्रेरणेतुदादि) से सोम का अर्थ सबको शुभ कर्मों और गुणों की प्रेरणा देने वाला परमेश्वर अथवा विद्वान् किया गया है। (**शुभकर्मगुणेषु प्रेरक** (परमेश्वर विद्वान् वा) ऋ. 1–91–3 । सु(षु प्रसवैश्वर्योः भ्वादि.) से सोम का अर्थ सारे चराचर को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर तथा ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर दोनों ही हैं (**सुवति चराचरं जगत्।** वा.सं03–56, ऋ11–91–12)। सोमलता या उत्तम औषध के आह्लादक गुण को देखते हुए सम्भवतया महर्षि दयानन्द ने इसका अर्थ 'आनन्द' भी किया है। एक स्थल पर यजमान प्रतिज्ञा करता हैं कि मैं ईश्वर के उस सर्वत्र व्याप्त यज्ञ को आनन्द से हृदय में दृढ़ करता हूँ (इन्द्रस्य परमेश्वरस्य तं भजनीयं यज्ञं सोमेनानन्दन दृढ़ीकरोमि। वा. 1–1–4)। भावना यह है कि यज्ञानुष्ठान् करते हुए मैं असुविधा नहीं अपितु आनन्द का अनुभव करता हूँ।

इसमें सन्देह नहीं कि वेद में सोम अनेक स्थलों पर औषधि के रूप में वर्णित है और इसके पीसने, छानने और पात्रों में भरने का उल्लेख है। इसके प्रसंग में बहुत बार मद् धातु का प्रयोग भी हुआ है। जिसका अर्थ धातुपाठ में हर्ष या हर्षित होना (**मदि हर्षे**) (**दिवादि.माद्यति**) दिया है, उन्मत्त होना या नशे में होना नहीं। सोम आह्लादक है और इसलिए आनन्द का वाचक भी । इसी कारण ऋग्वेद में कहा गया है कि जिस सोम को ब्राह्मण विद्वान् बह्मवेत्ता जानते है उसे कोई खाता या पीता नहीं (**सोमं यं ब्राह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन।** ऋ10–85–3) वह आध्यात्मिक सोम है जिसका सेवन मुख से नहीं किया जा सकता। यह केवल हृदय तथा मस्तिष्क द्वारा अनुभव किया जाने योग्य तत्त्व है। इसे सामान्य अधिषवण फलक पर बट्टे के द्वारा पीसा नहीं जाता और नहीं सामान्य कलश में इसका संग्रह किया जा सकता है। वस्तुतः मानव शरीर ही इसको ग्रहण करने वाला कलश है और परिश्रम, तपस्या, अभ्यास ही इसके पीसने छानने आदि की प्रक्रिया के प्रतिरूप है। इसी आधार पर श्री अरविन्द इसे दिव्य आध्यात्मिक आनन्द मानते हैं (श्री ओरोविन्दोज वैदिक गलस्सरी, पृ. 100–1 That these things are symbols is very clear in most of the hymns of the ninth Mandala were, for instaance, the physicar system of the human being is imagined as the jar of the Soma.......ऑन दी वेद. पृ.368)। एक मन्त्र में स्पष्ट उल्लेख है कि जिसने अपने शरीर को परिश्रम और तपस्या की आग में तपाया नहीं, कच्चे घड़े के समान वह उस आनन्द को ग्रहण करने में समर्थ नहीं। केवल तपे हुए, पके हुए ही उसे धारण करते हैं और उसका उपभोग करते है। (**अतप्ततनूर्न तदासो अश्नुते श्रृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत।** ऋ.9–83–1)। सोम (आनन्द) आत्मा का स्वामी, पालनकर्ता है। जब वह किसी के पास होता है तो उसका अंग–प्रत्यंग में फैल जाता है (**पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभर्गात्रणि पर्येषि विश्वतः।** वही) जिन महापुरुषों और कर्मठ व्यक्तियों ने कर्म परिश्रम की अग्नि में अपना तन, मन तपाया है वे स्वस्थ भी रहते हैं और आन्तरिक आनन्द भी अनुभव करते हैं। इस आनन्द के पश्चात् सभी बाह्य सुख निरर्थक हो जाते हैं (लेखक प्रणीत 'वैदिक संग्रह' पृ.124)।

सारे विश्व में यही दिव्य आन्दरूपी सोम सबसे स्वादिष्ट और मधुर तत्त्व है। यह तीव्रता से अंगों में व्याप्त हो जाता है। यही एक मात्र ऐसा रस है जो श्रेष्ठ है, जिसकी तुलना अन्य किसी रस से नहीं की जा सकती। जो इन्द्र अर्थात् जीवात्मा या राजा इसका पान कर लेता है, उसकी उत्तेजना, स्फूर्ति, शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि संघर्षों में, चुनौतियों में कोई सहन नहीं कर पाता, जीत नहीं पाता (**स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं तीव्रः किलायं रसवां उतायम्। उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं ने कश्चन सहत आहवेषु** ऋ.47–1)।

ऋग्वेद स्वयं सोम को आनन्द उत्पन्न करने वाला बताकर संभवतया उसे आनन्द रूप स्वीकार करने का संकेत किया गया है और बिन्दु रूप उससे प्रार्थना है कि वह इन्द्र अर्थात् जीवात्मा के लिए प्रवाहित है (**सोमेनानन्दं जनयन्निद्रायेन्दो परिस्त्रव।** ऋ.9–113–6)। यह आनन्द है जिसकी प्राप्ति पर सब दुःखों का नाश हो जाता है और मनुष्य मोद प्रमोद का अनुभव करता है, उसकी सब कामनाएं पूर्ण हो जाती है क्योंकि उस आनन्द के पश्चात कोई कामना ही नहीं रह जाती है। वह अमरत्व की स्थिति है। (**यत्रानन्दारश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते। कामस्य यत्राप्ताः कामस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्त्रव।।** ऋ.9–113–11)। इस आनन्द का पान करने वालें ही यह उद्घोषणा कर सकते है कि हे अमर परमेशवर हमने सोम (आनन्द) का पान किया है और हम अमर हो गये हैं। अब कोई दीन–हीनता की भावना हमारा क्या कर लेगी अर्थात् इस आनन्द के पश्चात् हमें किसी से कुछ लेना नहीं है। इसलिए कोई दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति जो, हिंसक है, हमारा क्या कर लेगा (**अपाम सोममृता अभूय अगन्म ज्योतिरविदान देवान्। किं नूनमस्भान् कृणवदरातिः किं धूर्तिरमृत मर्त्यस्य।।** ऋ.4–48–3)।

यह अनुमान अनुचित नहीं होगा कि यदि महर्षि ने ऋग्वेद के नवम् मण्डल का भाष्य किया होता तो वे भी सोम का अर्थ दिव्य अथवा आध्यात्मिक आनन्द भी करते। इस अनुमान का सम्पुष्ट आधार यह भी है कि यजुर्वेद भाष्य एक स्थल (1–4) पर उन्होंने सोम का अर्थ आनन्द किया ही है। ऋ. 1–22–1 (**अस्य सोमस्य पीतये) पर दयानन्द स्तोाव्यस्य सुरकस्य।** इस दिव्य आनन्द का पान विद्वान् अमृतत्त्व भाष्य ऋ.9–106–8) इसका वर्णन सबसे बड़े अर्थात दिव्य अलौकिक मद् अर्थात् आनन्द रूप में किया गया है। (ज्येष्ठयममर्त्य मदम् ऋ.148–4) इसलिए इसका उपभोग करने वाले के अंग प्रत्यंग में इसका निवास होता है–यह जब से प्राप्त होता है तो मनुष्य की सम्पूर्ण काया ही उससे प्रभावित होती है। (**गात्र गात्रे निषसत्था नृचक्षाः।** ऋ. 8–48–9)। इस आनन्द को पान करने वाले की अबाध वाणी उदित होती है (अयं मे पीत उदियर्ति वाचम् ऋ. 6–47–3) । यही इन्द्र अर्थात् जीवात्मा या परमात्मा का आत्मा अर्थात् सार या मूल तत्व है (आत्मेन्द्रस्य भवति। ऋ.9–85–3) यह दिव्य आनन्द शारीरिक और मानसिक ताप का शोधक तत्त्व है। यह द्युस्थान अर्थात् मस्तिष्क (**अथ यत कपालमासीत् सा द्यौरभवत्** श.ब्रा. 6–1–2–3) में फैल जाता है। इसके तन्तु सूत्र, चमकते हुए वहां अवस्थित और वहीं से सारे शरीर को प्रभावित करते है (तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ऋ.9–83–2) सारे को अपनी सूक्ष्मतम क्रियाओं के लिए मस्तिष्क से ही प्रेरणा मिलती है। जब वहां आनन्द के तन्तु फैले हों तो उनका प्रभाव समस्त शरीर क्रियाओं पर पड़ना स्वाभाविक है। इन तन्तुओं को आनन्द की तरंगें भी कहा जा सकता है। ये आनन्द की तरंगे ही आनन्द को चिरस्थाई बनाकर उसकी रक्षा करती है (लेखककृत 'वैदिक संग्रह' पृ.126)।

मस्तिष्क में स्थित सोम की रक्षा मस्तिष्क की करता है। वहीं सब इन्द्रियों के धारण से गन्धर्व है (गा इन्द्रयाणि धारयति) इन्द्रिय रूपी देवों की भी वह रक्षा करता है। और उन्हें जीवन तथा शक्ति प्रदान करता है। कहीं भी आनन्द या इन्द्रियों के कार्य में व्याघात पहुंचे तो मस्तिष्क उसे पहचान कर रोकता है। इन्द्रियां यदि सत्कार्य करती हुई श्रेष्ठता प्राप्त कर लें तो निश्चय ही उन्हें मस्तिष्क का मधुर रस प्राप्त होता है (गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः। गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनों भक्षमाशता।। ऋ.9–83–4 दृ. लेखक प्रणीत –वैदिक संग्रह' पृ. 133)। यदि आनन्द मनुष्य के संयम से सुरक्षित रहता है तभी वह इन्द्रियों को सत्कार्यों की प्रेरणा देता है। अन्यत्र कहा गया है कि यह दिव्य ज्ञान मनुष्य को क्रमशः बिन्दु–बिन्दु के रूप में प्राप्त होता है। आरंभ में ही जब ये बिन्दु किसी को प्राप्त होतें हैं तो ये मस्तिष्क में एक साथ शब्द करते हैं। ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें किसी दूसरे के द्वारा सुना ही नहीं जा सकता है। इन्हें ही परावाक् कहा जा सकता हैं। सूफी इसे ही अनन्तनाद कहते हैं। ये उसी प्रकार निरन्तर गति करते है जिस प्रकार किसी तत्व के सूक्षम अवयव गति करते हैं जिस प्रकार किसी तत्व के सूक्ष्म परमाणु के केन्द्र में उसके अति सूक्ष्म अवयव गति करते हैं ये बिन्दु मिलकर दिव्य आनन्द होते हैं तो मस्तिष्क के तीनों भागों अग्र, पश्च और मध्य को ग्रहण करते है। यह दिव्य आनन्द असुर अर्थात् पण या शक्ति देने वाला है। सत्यरूपी नौकाओं के द्वारा ही मनुष्य अच्छे कार्य कर के संसार के दुखों के जंजाल से पार कर उस आनन्द को प्राप्त करता है।) **स्त्रवे द्प्सस्य धमतः सभस्करन् ऋतस्य योना समरन्त नाभयः। त्रीन्त्स मूर्ध्वो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीयरन्।।** 9–7–3–1) जिस व्यक्ति को आनन्द प्राप्त होता है उसके पास ये आनन्द बिन्दु मिलकर गति करते है और ये कमनीय बिन्दु उसके हृदयरूपी समुद्र में) **धामन् ते विश्वं भवनमधि श्रितं अन्तः समुद्र**

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

theraryasamaj.org

हवन क्यों करें, करें या न करें

● मनमोहन कुमार आर्य

हवन क्या है? हवन एक कर्मकाण्ड है जिसमें एक हवन कुण्ड, यज्ञ की समिधायें, एक पात्र में घृत, उसमें एक चम्मच या चमसा, आचमन के लिए जल व उनमें चम्मच, यजमानों व याज्ञिकों की संख्या के अनुसार प्लेटों में हवन सामग्री व याज्ञिकों के बैठने के लिए आसन आदि का प्रबन्ध किया जाता है। **यज्ञ में हवन के मन्त्र बोले जाते हैं जिनकी भाषा वैदिक संस्कृत है।** मन्त्रों को बोलने का प्रयोजन यह है कि इससे वेदों में निहित ईश्वरीय ज्ञान की रक्षा व इनके अर्थों को जानकर इनसे होने वाले लाभ विदित होते हैं व इनसे भी स्तुति–प्रार्थना–उपासना हो जाती है जो अन्यथा नहीं हो सकती। **यह भी यहां स्पष्ट कर दें कि थोड़े से परिश्रम व कुछ बार आवृत्ति करने पर स्मरण हो जाते हैं।** हमने देखा है कि जिन परिवारों में यज्ञ होता है वहां के छोटे–छोटे बच्चों, जिनको ठीक से भाषा का ज्ञान होता, अपनी तोतली भाषा में ही मन्तोच्चारण नहीं करते हैं तो वह दर्शक को बहुत प्रिय व अच्छा लगता है। **जो व्यक्ति, बूढ़ा, युवक विद्यार्थी व बच्चा, विश्व की श्रेष्ठतम् धर्म व संस्कृति की रक्षा के लिए इतना भी नहीं कर सकता, अपितु हवन का विरोध करता है, उससे क्या आशा या अपेक्षा की जा सकती है?** वह उस ईश्वर के प्रति व देश समाज के पति कृतघ्न होता है, जिसने यह संसार बनाया व उसे जन्म व सुखों की नाना प्रकार की सामग्री से समृद्ध किया है। आरम्भ में मन्त्रों को बोल आचमन, इन्द्रिय स्पर्श, आठ स्तुति, प्रार्थना व उपासना के मन्त्र, फिर स्वस्तिवाचन, शान्तिकरणम्, पश्चात् हवन अर्थात् हवन कुण्ड में आहुति देने का क्रम प्रारम्भ होता है। प्रथम अग्न्याधान, पश्चात् समिदाधादान,घृत–आहुतियां, जल–सिंचन व भिन्न–2 नामों व विषयों की आहुतियों का क्रम होता है।पूर्णाहुति,यज्ञ प्रार्थना, शान्तिपाठ व इनके पश्चात ईश्वर से कुछ क्षण व अधिक मौन प्रार्थना से यज्ञ समाप्त होता है। यह समस्त कार्य 15 से 30 मिनट में पूरा किया जा सकता है। **यह कुछ संक्षिप्त परिचय हवन का है।** हवन क्या है, का कुछ उत्तर इन पंक्तियों में आ गया है, कुछ शेष है।

हवन वह पद्धति या *process* है जिससे गृह व निवास स्थान की दूषित व रोगोत्पादक वायु को बाहर निकाला जाता है, बाहर की शुद्ध वायु को घर में रोशन दान, खिड़की व दरवाजों से प्रवेश कराया जाता है, रोग न हों और यदि किसी सदस्य को है तो उसका निवारण या उपचार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्य या डाक्टर के परामर्श से ओषधि का सेवन भी अवश्य करना चाहिये। हवन अपना कार्य करेगा और बचा हुआ कार्य ओषधि के सेवन से होगा। **हवन से घर के अन्दर की वायु की शुद्धि होती है।** शुद्धि दो प्रकार से है। पहली अन्दर की वायु हवन की अग्नि के ताप व गर्मी से हल्की होकर बाहर निकल जाती है तथा बाहर की शुद्ध वायु, हवनसे हल्की हुई अन्दर की वायु के निकलने पर प्राकृतिक व विज्ञान के नियमों के अनुसार स्वतः गृह में प्रविष्ट होती है। यज्ञ में जो पदार्थ आहुत किये जाते हैं, वह अग्नि से सूक्ष्म हो जाते हैं। वह सारे घर में फैल जाते हैं। सूक्ष्म पदार्थों का हमारे स्वास्थ्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार अग्नि में एक मिर्च को डालने पर उसकी धांस से वहां लोगों का बैठना कठिन हो जाता है जिसका कारण मिर्च के प्रभाव में वृद्धि का होना होता है। इसी प्रकार यज्ञ में आहुत द्रव्यों का प्रभाव बहु–गुणा होकर उससे अनेकशः अदृश्य आध्यात्मिक व भौतिक लाभ मिलते हैं। हानिकारक रोग उत्पन्न करने वाले वायु में विद्यमान कीटाणुओं व बैक्टिरियाओं का नाश होता है। गीता के अनुसार यज्ञ करने से बादल बनते हैं, बादल से वर्षा होती है, उस वर्षा के जल में हवन में होम किये गये पदार्थ सूक्ष्म होने के कारण घुले–मिले होते हैं, हवन में आहुत सूक्ष्म पदार्थों व वर्षा के जल से हमारे खेतों में रह जल उत्तम खाद का काम करता है। पुरुष व प्राणी इस प्रकार यज्ञों से प्रभावित उत्पन्न हुए अन्न का भक्षण करते हैं, तो इस अन्न से शरीर की विभिन्न इद्रियां व सभी अंग स्वस्थ व बलवान होकर पौरुष शक्ति उन्नत होती है। ऐसे स्त्री–पुरुषों से जो सन्तानें उत्पन्न होतीं हैं, वह श्रेष्ठ होती हैं। हवन में वेद मन्त्र का बोलना आवश्यक है। पूर्ण वर्णित लाभ से अतिरिक्त इसका अन्य लाभ यह है कि बोले जाने मन्त्रों के अर्थो को जानकर यज्ञ में रूचि व प्रवृत्ति बढ़ती है। आजकल यज्ञों में बोले जाने सभी मन्त्र व उनके अर्थ लघु पुस्तिकाओं में उपलब्ध हो जाते हैं। थोड़ा सा प्रयास मात्र करना है। इससे सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर प्रदत्त व सृष्टि इतिहास में सर्वश्रेष्ठ वैदिक ज्ञान व विचारों वाले इन वेद मन्त्रों की रक्षा होती है जो कि मनुष्यमात्र का प्रथम कर्तव्य है। इसका कारण संसार में ज्ञान से बढ़कर कुछ नहीं है तथा यह मन्त्र श्रेष्ठ व अपौरुषेय ज्ञान का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जिनकी रक्षा आवश्यक है।

यहां ध्यान देने योग्य बात है कि सृष्टि व वेद की उत्पत्ति को 1,96,08,53,114 वर्ष हो चुके हैं। हमारे पूर्वजों ने प्राणपण से वेदों की इतनी लम्बी अवधि तक रक्षा की है। यह संसार के इतिहास में अपूर्व व आश्चर्यजनक है। **हम तो इसे संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य कहेंगे।** आज वेदों की रक्षा करना पहले से आसान है। पुस्तकों द्वारा, सीडी/वीसीडी आदि के द्वारा मन्त्रों को बोल कर व स्मरण कर इनकी रक्षा होती है। जो लोग वेदों के सन्ध्या व हवन के मन्त्रों को बोलना अनावश्यक समझते हैं उनसे हम यह कहना चाहते हैं कि जब छोटे–छोटे कार्यों में गृहस्थी अपना लम्बा समय व बड़ी धनराशि व्यय कर सकते हैं तो ईश्वर, जिसने हमारे लिए सृष्टि बनाई, हमें यह मानव शरीर दिया व हमारे माता–पिता, पुत्र व पुत्रियां आदि सम्बन्धी हमें दिये तो क्या उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए सन्ध्या व हवन नहीं करना चाहिये? हम समझते हैं कि सभी बुद्धिमान पाठक कहेंगे कि अवश्य करना चाहिये। अतः जो बन्धु न करते हों उनसे हमारा अनुरोध है कि आज से ही हवन करना आरम्भ कर दें और इसके दृश्य व अदृश्य लाभों से वंचित न हों।

अब सन्ध्या व हवन से होने वाले लाभ की कुछ चर्चा और कर लेते हैं। सन्ध्या से तो ईश्वर से निकटता होती है। इससे बुरे गुण–कर्म–स्वभाव का छूटना व श्रेष्ठ गुण, कर्म व स्वभाव का बनना होता है। कालान्तर में इसको निरन्तर करते रहने से ईश्वर साक्षात्कार होकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति होती हैं। हवन से घर का वायु मण्डल शुद्ध होने से चित्त प्रसन्न रहता है। बच्चों पर व परिवार में आने–जाने वाले लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। अन्ध–विश्वास, पाखण्डों, दुष्कर्मो आदि से बचते हैं। सभी सदस्य स्वस्थ रहते हैं या रोग बहुत कम होते हैं। ईश्वर की आत्मा में प्रेरणायें होती रहती हैं। अच्छे कार्यो में प्रवृत्ति होती है जिससे व्यक्ति अच्छे कर्म करता है। अच्छे कर्मो से सुख मिलने के साथ प्रारब्ध में पुण्यों की अधिकता से यह जन्म व भावी जन्म सुधरता व उन्नत होता है। याज्ञिक परिवार के लोगों का स्वास्थ्य अच्छा होना व दीर्घायु होने से अनेकानेक लाभ होते है। **ईश्वर ने यज्ञ करने वालों को देवता कहा है।** हम यज्ञ करते हैं तो हम ईश्वर की दृष्टि में देवता होते हैं। यह पृथिवी देवों द्वारा यजन किये जाने से ईश्वर इसके लिए वेदमन्त्र में **"देवयजनि"** शब्द का प्रयोग करते हैं। हम यह भी कहना चाहते हैं कि **जो व्यक्ति, वह चाहे किसी भी मत, मतान्तर, सम्प्रदाय, मजहब, विचारधारा या मान्यता का क्यों न हो, यदि यज्ञ नहीं करता तो वह ईश्वर के नियमों को तोड़कर अपराधी होने से ईश्वर द्वारा उसे मनुष्य जन्म दिये जाने को असफल सिद्ध करता है व दण्ड का भागी होता है।** इसे इस प्रकार से समझ लें कि कोई व्यक्ति सरकारी या निजी क्षेत्र में नौकरी करता है। वहां उसे 10 बजे आने के लिए कहा जाये और वह देर से पहुंचे या न पहुंचे तो वह दण्ड स्वरूप नौकरी से निकाल दिया जाता है, इसी प्रकार से यज्ञ की ईश्वराज्ञा वा वेदाज्ञा का उल्लंघन करने या न मानने से वह ईश्वरीय दण्ड का भागी हो जाता है। हम समझते हैं कि जिस प्रकार आजकल अपराध करने पर सजा बहुत बाद में मिलती है। पहले जांच होती है, मुकदमा चलता है, सजा होती है और फिर अपराधकर्ता उसे जेल में रहकर या आर्थिक दण्ड आदि के रूप में सहन व वहन करता है। ईश्वर भी सभी कर्मो के दण्ड एक साथ नहीं देता। वह अन्न के दानों की तरह, जब पक जाते हैं, तब वह उपयोग करने योग्य होते हैं। इसी प्रकार कर्मों के पक जाने व पूर्ण हो जाने पर दण्ड मिलता है, तब फल मिलने पर कर्ता अपनी अल्पज्ञता व अज्ञानता से उसे भूल जाता है, परन्तु ईश्वर के सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान व हर क्षण व फल का साक्षी होने के कारण प्रत्येक कर्म का स्मरण रहता है और कोई भी कर्म बिना भोग किए समाप्त नहीं होता। **"अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम्।"** अतः ईश्वरीय दण्ड को सामने रखकर विवेक पूर्वक ही कर्मों को करना चाहिये। एक गलती प्रायः लोग यह करते हैं कि लोभी, स्वार्थी, अल्प ज्ञानी, व मूर्खों को अपना धर्म गुरु बना लेते हैं। ऐसे लोगों की वही दशा होती है जो अज्ञानी को गुरु बनाकर पढ़ने वालों की होती है। ऐसे विद्यार्थी हर परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं। इसी प्रकार धार्मिक चेलों का भी अज्ञानी गुरू के विद्यार्थियों वाला हाल होता है।

हमनेनिष्पक्षभावसेमनुष्य–देश–समाज के हित को सामने रखकर संक्षेप में यज्ञ व हवन के विषय में लिखा है। आशा है कि पाठक इन पर विचार करेगे और इन्हें सत्य पायेंगे। हम उनसे अपेक्षा करते हैं कि वह भी सन्ध्या व हवन को अपनायेंगे और दूसरों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करेंगे और ऐसा करके पुण्य के भागी बनें। हम यह भी कहना चाहेंगे कि–यदि किसी यज्ञ प्रेमी के पास यज्ञ करने के लिए घृत, सामग्री, स्थान आदि की समस्या हो तो वह यज्ञ को छोड़े नहीं, अपितु अपने मन्त्रों को बोल या मन से उनका पाठ कर हवन को सम्पन्न करें। हम समझते हैं कि यदि दैनिक यज्ञ में स्वस्तिवाचन व शान्तिकरण को भी सम्मिलित कर सकें तो इसके अधिक लाभ होने की सम्भावना है।

196 चुक्खूवाला–2,
देहरादून–248001
फोन – 09412985121

thearyasamaj.org

क्या अथर्ववेद में सती प्रथा, पिण्डदान आदि का वर्णन है?

● दिनेशचन्द्र शास्त्री,

शौनकीय अथर्ववेद संहिता का 18वां काण्ड अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें 4 सूक्त, 4 अनुवाक और प्रत्येक अनुवाक में 6,6,7,9 कुल 28 सूक्त और कुल 283 मन्त्र हैं। इस प्रकार कलेवर की दृष्टि से छोटा होने पर भी यह काण्ड विषय की दृष्टि से बहुत गम्भीर है। चतुर्वेद भाष्यकार आचार्य सायण ने इस काण्ड में यम और पितृमेध का वर्णन माना है। उनके अनुसार 'यम' भयानक मृत्यु का देवता है। उन्होंने यम लोक की पृथक् कल्पना की है। प्रो. विश्वनाथ के अनुसार यम कोई भयानक मृत्यु का देवता नहीं अपितु सारी सृष्टि क्रियाओं को नियन्त्रित करने वाला जगनियामक परमेश्वर है, शिष्यों को यम नियमों का पालन कराने वाला, नियन्त्रण में रखने वाला नियामक आचार्य है। सायण के अनुसार 'पितर' स्वर्गोपलब्ध पिता, पितामह और प्रपितामह आदि पूर्वज होते हैं। जबकि प्रो. विश्वनाथ के अनुसार 'पितर' केवल पूर्वज ही नहीं अपितु प्रसंगानुसार जनक–जननी, उपनयनकर्ता, गुरु, अन्नदाता, भयत्राता, बुजुर्ग आदि भी हैं। इस काण्ड के भाष्य में भाष्यकारों की कतिपय अन्य मान्यतायें इस प्रकार है–

1. यम यमी संवाद

सायण के आनुसार प्रथम अनुवाक के प्रथम सूक्त में –

''**अधो कृणुस्व सविदं सुभेन्द्राय**'' (अथर्व. 18.16.)

मन्त्र तक दिवस्कान् की सन्तान यम और यमी के संयोगार्थ संवाद का वर्णन किया गया है। इनमें यमी ने मिथुनभाव के लिए अपने भाई यम से अनेक प्रकार से प्रार्थना की है और उसने स्वभगिनीगमन के अत्यन्त अनुचित होने से अनेक प्रकार की युक्तियों द्वारा उसने निषेध किया है। प्रो. विश्वनाथ के अनुसार उन पर निर्दिष्ट मन्त्रों में यमी यम अन्य दृष्टि जोड़िया बहन और भाई के संवाद पर प्रश्नोत्तर की रीति से यह बताया है कि ये दोनों बहन भाई होकर परस्पर विवाह कभी न करें; किन्तु बहिन भाई से अन्य पुरुष के साथ और भाई बहिन से अन्य दूसरी स्त्री के साथ विवाह करें।

2. सती प्रथा (सहमरण)

आचार्य सायण के अनुसार तृतीय अनुवाक के प्रथम सूक्त के प्रारम्भिक मन्त्रों में सतीप्रथा अर्थात् सहमरण का वर्णन है। इस प्रसंग में इन्होंने 'पतिलोक' का स्वर्गलोक अर्थ किया है और 'पुराण धर्म' से स्मृति पुराणादि में प्रोक्त धर्म का ग्रहण किया है। प्रो. विश्वनाथ के अनुसार उपर्युक्त मन्त्रों में नियोग विधान का उपदेश है। इन्होंने 'पतिलोक' का पतिगृह और 'पुराण धर्म' का 'सनातन' (वैदिक) धर्म अर्थ किया है।

3. पिण्डदान

आचार्य सायण के अनुसार चतुर्थ अनुवाक के अष्टम सूक्त के 75 से 77 मन्त्रों में पितरों को पिण्डदान का वर्णन है। प्रो. विश्वनाथ के अनुसार इन मन्त्रों में पितरों अर्थात् माता, पिता, विद्याप्रदाता, गुरु अन्नदाता आदि के सम्मान का उपदेश है। सम्बन्धित उपर्युक्त मन्त्रों के व्याख्यान में पिता, पितामह और प्रपितामह के सम्बन्ध को ही तार्किक दृष्टि से पितृमेध में स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है– ''पितृयज्ञ, श्राद्ध तथा पितृमेध में इन्हीं तीन का अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह का सम्बन्ध होता है। प्रपितामह के पिता आदि का नहीं। 100 वर्षों की आयु की दृष्टि से श्राद्धकर्ता पुत्र के लिए इन्हीं तीन का जीवित रहना अधिक सम्भावित है। पञ्चमहायज्ञों में पितृयज्ञ है। ये यज्ञ विवाहित पुरुष को करने होते हैं 24 वर्षों की आयु में स्नातक बनकर 25वें वर्ष में विवाह द्वारा सन्तानोत्पादन करके ब्रह्मचारी की सन्तान हो जाने के समय इसके पिता की आयु 50 वर्षों की पितामह की 75 वर्षों की तथा प्रपितामह की 100 वर्षों की सम्भावित है। इससे प्रतीत है कि पितृयज्ञ आदि में इन तीनों के ही जीवित होने के कारण इन्हीं तीन का यजन अर्थात् सत्कार होता है। (पृष्ठ 147) उपर्युक्त कतिपय मान्यतायें वेद के स्वरूप को प्रभावित करती है। प्रो. विश्वनाथ का भाष्य तर्काधारित सर्वमान्य और बुद्धिगम्य है। इससे यह ज्ञात होता है कि इनके भाष्य में कितना स्वारस्य है और कर्मकाण्डिक अर्थ कितना खोखला है।

क्या अथर्ववेद में बच्चों की सी बातों के सदृश तुच्छ वर्णन हैं?

अथर्ववेद का 15वां काण्ड अति रहस्य है। इस काण्ड के सम्बन्ध में अथर्ववेद के अग्रेजी में अनुवाद करने वाले विलयम ड्विट ह्विटनी लिखते हैं कि

'' In spite of its purility and the surface-obscurity, the book is not unworthy of a searching investigation''

अर्थात् इस काण्ड में बच्चों की–सी बातों के सदृश तुच्छ वर्णनों तथा दूसरे आपाततः दुर्बोध होते हुए भी, काण्ड अनुसन्धान के आयोग्य नहीं। परन्तु अनुक्रमणिका में इस काण्ड के आरम्भ में लिखा है– अध्यात्मन्! इस कथन से प्रेरित होकर प्रो. विश्वनाथ को इस 15वें काण्ड से मन्त्रों का गहरा अध्ययन कर परिणाम रूप में बच्चों के बुद्धिगम्य अर्थों के करने में सफलता असीम प्राप्त हुई है।

वे लिखते है (देखें–अथर्ववेद 15वां काण्ड पृ.6 अनु.–1 प्रो. विश्वनाथ कृत) –15 वें काण्ड में दो अनुवाक हैं। और 18 सूक्त तथा इनका देवता है –व्रात्य। अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 23, मन्त्र 25वें में इन अनुवाकों को 'व्रात्याभ्यां स्वाहा' द्वारा सूचित किया है। काण्ड 15 वें में 18 सूक्त 01 और 15–18 में व्रात्य–परमेश्वर का वर्णन है। 18 वें सूक्त में परमेश्वर के विराट् स्वरूप का वर्ण हुआ है। सूक्त 2–7 में व्रात्य–संन्यासी का कथानक रूप में वर्णन हुआ है, जो कि प्रकृति रूप अर्थवाद में हुआ है। यह काल्पनिक है, किसी विशेष व्यक्ति रूप संन्यासी का वर्णन नहीं। इस वर्णन में प्राची आदि दिशाओं में संन्यासी की यात्रा का–सा वर्णन हुआ है, जो कि 'मनसा परिक्रमा' के मन्त्रों के सदृश केवल मानसिक परिक्रमारूप है। सूक्त 3 में व्रात्य संन्यासी की आसन्दी अर्थात् विश्रामकुर्सी का वर्णन हुआ है, जिसके निर्माण में वस्तुओं और वेदों को अवयव रूप में वर्णित किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि संन्यासी की यात्रा तथा आसन्दी कल्पनामय ही है।–इसी प्रकार सूक्त 6 और7 के वर्णन भी केवल कल्पनामय है – यह इनमें वर्णित विषयों द्वारा स्पष्ट है। सूक्त 8 और 9 में व्रात्य राजन्य का वर्णन हुआ है। सूक्त 10 से 14 तक में व्रात्य अतिथि का तथा 14वें में विशेष रूप से व्रात्य अतिथि *''आत्मादि न होगी''* का वर्णन हुआ है। इस काण्ड के अन्य प्रतिपाद्यों के विषय में तर्क – सम्मत विवेचना करते हुए प्रो. विश्वनाथ ने लिखा है।

'सूक्त 6 के 11वें और 12 वें मन्त्रों में 'इतिहास, पुराण गाथा और नाराशंसी' पद पठित हैं, मन्त्रों में '**य एवं वेद**' द्वारा फल प्राप्तियों का वर्णन हुआ है, अर्थात् इस द्वारा यह दर्शाया है कि जो व्यक्ति– ''इस प्रकार जानता है''– वह अमुक–अमुक फलों को प्राप्त कर लेता है। वैदिक सिद्धान्तानुसार ज्ञान का पर्यवसान कर्म में होता है। यथा '**आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थकामतदर्थानाम्** (मीमांसा), अर्थात् वेद क्रिया अर्थात् आचरण के लिए हैं, अतः आचरण रहित ज्ञान, अनर्थक है। इसलिए मन्त्रार्थों में '**य एवं वेद**' के तदुनुसार आचरण करता है।'' (अथर्ववेद भाष्य काण्ड 13वें की भूमिका)

इस प्रकार प्रो. विश्वनाथ के भाष्य में पाश्चात्त्य विचारकों की कल्पनाजन्य एवं अतथ्य अनर्गल बातों का तार्किक रूप में समाधान किया गया है।

प्रो. एवम् अध्यक्ष वेदविभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

कोटा में रामजीलाल शर्मा का नेत्रदान

नेत्रदान महादान परम्परा का निर्वाह करते हुए आर्य समाजी व समाजसेवी राम जी लाल शर्मा के निधन ने अपने पश्चात् अपनी आंखों का नेत्रदान शाइन इण्डिया के प्रभारी डॉ. कुलवंत गौड़ व उनकी टीम के माध्यम से किया गया।

यह स्मरणीय कि स्व. रामजी लाल शर्मा पूर्व में ही नेत्रदान का मृत्यु पूर्व ही संकल्प कर चुके थे।

आज आर्य समाज रेलवे कॉलोनी के वरिष्ठ सदस्य एवं समाजसेवी श्रीरामजीलाल शर्मा के निधन का समाचार पाकर जिला सभा के वरिष्ठ उपप्रधान हरिदत्त शर्मा, आर्य समाज के जिला प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा नेत्रदान प्राप्त करने वाले शाइन इण्डिया के प्रभारी डॉ. कुलवंत गौड़ व महेन्द्र कुमार यादव को लेकर श्री शर्मा के निवास रेलवे हाउसिंग सोसायटी पहुंचे तथा नेत्रदान प्राप्त किया।

आवश्यकता है

एक विद्वान पुरोहित (शास्त्री) की आवश्यकता है जिसने गुरुकुल पद्धति से शिक्षा प्राप्त की हो और विवाहित हो। भोजन एवं आवास निःशुल्क। वेतन योग्यतानुसार दिया जायेगा। आवेदन प्रमाण पत्र सहित करें।

सम्पर्क: महाप्रबन्धक, श्रद्धानन्द अनाथालय ट्रस्ट
कर्णताल, करनाल–132001 (हरियाणा) मो. 9416566429

शोक समाचार

आर्य युवक परिषद् के अध्यक्ष माननीय श्री अनिल आर्य जी के छोटे भ्राता का काहिरा में निधन हो गया। हम परम पिता परमात्मा से दिवंगत आत्मा की शांति व सद्गति की प्रार्थना करते हैं और उनके परिवार के सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि परिवार के सदस्यों को इस भीषण दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

thearyasamaj.org

हिन्दू विद्वानों के लिए विचारणीय विषय

● कृष्ण चन्द्र गर्ग

1. ईश्वर एक है, अनेक नहीं। वह निराकार है और सर्वव्यापक है। उसकी मूर्ति नहीं बन सकती। न तस्य प्रतिमाऽस्ति – (यजुर्वेद 32,3)। ईश्वर अपने सभी काम स्वयं करता है। उसके कोई पीर, पैगम्बर, अवतार या एजेंट नहीं हैं।

2. मूर्तिपूजा हिन्दुओं की सबसे बड़ी अज्ञानता है। इसने हिन्दुओं का सबसे अधिक अहित किया है। मूर्तिपूजा के कारण हिन्दू ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं, और परोपकार आदि शुभ कर्मों से दूर हो गये हैं। जो तन, मन, धन इन्सानों की सेवा में लगना चाहिए था वह पत्थर की मूर्तियों पर लग रहा है। मुसलमानों ने सैंकड़ों सालों तक हजारों मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा और वहां से बेशुमार सोना, चाँदी, हीरे–जवाहरात आदि लूटकर अपने देशों को ले गये हैं।

3. मर्यादा पुरुषोतम श्री राम और योगेश्वर श्री कृष्ण ईश्वर न थे और न ही ईश्वर के अवतार थे। वे महापुरुष थे। वे अपने माता–पिता से जन्मे, बड़े हुए, उनके विवाह हुए, उनके संतानें हुईं। उन्होंने भी कार्य किए और सुख–दुख भोगे। अन्त में वे भी मृत्यु को प्राप्त हुए। उन्हें याद करने का अर्थ है कि उनके सद्गुणों को हम अपने जीवन में धारण करें।

4. योगेश्वर श्री कृष्ण – महाभारत में श्री कृष्ण जी का जीवन बड़ा पवित्र बताया गया है। उन्होंने जन्म से मृत्यु तक कोई भी बुरा काम लिया किया हो ऐसा नहीं लिखा। वे पत्नीव्रती थे, उनकी पत्नी थी रुक्मणी। वे सुदर्शन चक्रधारी, योगेश्वर, नीतिनिपुण, पाण्डवों को युद्ध में विजय दिलाने वाले, कंस, जरासंध आदि दुष्ट पापाचारी राजाओं का वध करने वाले थे।

परन्तु भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में श्री कृष्ण जी पर दूध–दही–मक्खन की चोरी, कुब्जा दासी से संभोग, परस्त्रियों से रासलीला–क्रीड़ा आदि झूठे दोष लगाए हैं। गोपाल सहस्रनाम में श्री कृष्ण जी को चौरजारशिखामणि तक का खिताब दिया गया है जिसका अर्थ है चोरों और जारों का सरदार। ऐसी बातों को पढ़–पढा और सुन–सुना कर दूसरे मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निंदा करते हैं और हिन्दुओं का मज़ाक उड़ाते हैं।

हिन्दुओं को श्री कृष्ण जी के उसी रूप को स्वीकार करना चाहिए जो महाभारत में वर्णित है।

5. देवी, देवता–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश आदि एक ईश्वर के ही नाम हैं। ये कोई अलग से देवता नहीं हैं। देवी या देवता वह है जो हमें कुछ देता है। हमारे माता–पिता देवता हैं। वे हमें जन्म देकर हमारा पालन पोषण करते हैं। हमारा अध्यापक देवता है। वह हमें विद्या और शिक्षा देता है। कोई भी परोपकारी व्यक्ति देवता है, वह संसार का भला करता है।

6. सुख–दुख का कारण मनुष्य के अपने अच्छे–बुरे काम हैं, ग्रह नहीं। ग्रह तो जड़ हैं, ज्ञानहीन हैं और बुद्धिहीन हैं। वे किसी से प्रेम अथवा द्वेष नहीं कर सकते। ईश्वर की न्याय व्यवस्था से दूसरों का भला करने से सुख प्राप्त होता है और दूसरों का बुरा करने से दुख मिलता है।

7. ज्योतिष नाम से चल रही भविष्य बताने की और पाप कर्म के फल से बचाने की दुकानें सब ठग विद्या है। इसमें फंसना अपना धन बर्बाद करना और परेशानी मोल लेना है। ईश्वर की व्यवस्था में मनुष्य दखल नहीं दे सकता।

8. ईश्वर हमारा माता–पिता है। हर समय वह हमारे साथ है। हमारे और ईश्वर के बीच में कोई और बिचौलिया नहीं बन सकता।

9. जो मर चुके हैं उनका श्राद्ध नहीं हो सकता। जीवित बुजुर्गों की सेवा करना ही उनका श्राद्ध है। जैसे हमें बचपन में उन्होंने पाला है वैसे ही बुढ़ापे में उनकी देखभाल करना हमारा कर्त्तव्य है।

10. जगराता पापकर्म है। लाऊडस्पीकर की ऊँची आवाज में दूसरों को परेशान करना ईश्वर भक्ति नहीं है। ईश्वर अन्तर्यामी है। हमारे मन में जो है उसे भी वह जानता है। जगराते में सुनाई जाने वाली तारा देवी की कहानी बहुत ही घटिया, असम्भव और विनाशकारी है।

11. फूल तोड़ना पाप कर्म है। डाली पर लगा हुआ फूल सुगन्ध और शोभा देता है। तोड़ने के थोड़ी देर बाद वह दुर्गन्ध देना शुरु कर देता है। पानी में सड़कर तो और अधिक दुर्गन्ध देता है।

12. मांस खाना महापाप कर्म है। मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। मांस मनुष्य के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हानिकर है। पशु जब अपने को मारे जाने की स्थिति में देखते हैं तब उन्हें जो कष्ट होता है उसे याद करके भी मनुष्यों को मांस नहीं खाना चाहिए। इंग्लैण्ड की साऊथैम्पटन यूनिवर्सिटी में किए परीक्षण के अनुसार शाकाहारियों का समझदारी का स्तर (I.Q.) मांसाहारियों से 5 प्रतिशत अधिक होता है।

13. कोई व्यक्ति धार्मिक है या नहीं – यह उसके आचरण और व्यवहार से पता चलता है, दिखावे के बाहरी चिह्नों से नहीं। सत्य का आचरण और पक्षपात रहित व्यवहार ही धर्म है और यही मानव धर्म है।

14. कलियुग कुकर्म करने का ठेका नहीं है। जैसे सोमवार, मंगलवार आदि दिनों के नाम हैं वैसे ही सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग समय की गणना के नाम हैं। कलियुग से डरने का कोई कारण नहीं है। जैसे अच्छे और बुरे काम हर दिन होते हैं, ऐसे ही अच्छे और बुरे काम सब युगों में होते हैं।

15. नदी तालाब आदि में नहाने से पाप नही कटते और न ही मन शुद्ध होता है। कर्मों का फल भोगे बिना नहीं कटता। जैसी करनी वैसी भरनी, जो बोआ सो काटा। मन सत्य के आचरण से शुद्ध होता है और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

16. किस्मत या भाग्य – ईश्वर हमारे कर्मों के अनुसार हमें सुख व दुख के रूप में फल देता है – अच्छे कामों का फल सुख और बुरे कामों का फल दुख। कुछ कामों का फल उसी समय मिल जाता है और कुछ कामों का फल बाद में उचित अवसर आने पर मिलता है। जो फल हमें बाद में मिलता है उसे हम किस्मत या भाग्य कहते हैं।

17. हमारे धर्म ग्रन्थ चार वेद हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। वेद ज्ञान के पुस्तक हैं जो सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार ऋषियों–अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा – को दिया। वेदों में सभी मनुष्यों के कल्याण के लिए उत्तम–उत्तम उपदेश हैं, जन्म से मरण तक मनुष्यों को जीने का सही–सही ढंग बताया गया है।

कुछ लोग वेदों पर मांसाहार, सुरापान, गोहत्या आदि के झूठे दोष लगाते हैं। वेदों में ऐसी अनर्गल बातें नहीं हैं। वेदों में गाय आदि गुणकारी पशुओं की रक्षा के आदेश हैं, मदिरापान व मांसाहार का निषेध है।

पुराण हमारे धर्म ग्रन्थ नहीं है। ये ग्रन्थ अश्लील और गलत बातों से भरे हुए हैं। पुराण महर्षि वेदव्यास के बनाये हुए नहीं हैं। बहुत बाद में बने ग्रन्थ हैं ये। महर्षि वेदव्यास तो बहुत बड़े विद्वान, धार्मिक, सदाचारी परोपकारी पुरुष थे। वे ऐसे गपौड़े नहीं गढ़ सकते थे।

18. शिवलिंग पूजा अश्लील और अशोभनीय कार्य है।

19. हमारा नाम आर्य है, हिन्दू नहीं। चार वेद, छः शास्त्र, ग्यारह उपनिषद, रामायण, महाभारत गीता आदि किसी भी ग्रन्थ में हिन्दू शब्द नहीं है। वहां आर्य शब्द अनेक बार आया है। भारतवर्ष का सबसे पहला नाम आर्यावर्त्त था अर्थात आर्यों के रहने का स्थान।

20. पुण्य, पाप– जिस काम से दूसरों का भला हो वह पुण्य और जिस काम से दूसरों का अहित हो वह पाप कहलाता है।

21. हिंसा, अहिंसा – किसी से वैर भाव रखना हिंसा कहलाती है। किसी निर्दोष को दण्ड देना हिंसा है, परन्तु दोषी को दण्ड देना, अहिंसा है।

22. स्वर्ग, नरक – स्वर्ग या नरक नाम के कोई अलग से विशेष स्थान नहीं हैं। विशेष सुख का नाम स्वर्ग है और विशेष दुख का नाम नरक है।

23. तप क्या है – परोपकार आदि अच्छा काम करने में जो बाधाएं और कष्ट आएं सहन कर लेना तप कहलाता है।

24. व्रत – कोई भी अच्छा काम कर लेने का प्रण कर लेना और उसे निभाना व्रत कहलाता है।

25. इस्लाम कोई धर्म नहीं है, यह एक अत्याचारी व्यवस्था है। गैर मुसलमानों को तड़पाना–मारना, उनका धन –सम्पत्ति लूटना, उनकी औरतों और लड़कियों से बलात्कार करना, तलवार के जोर से उन्हें मुसलमान बनाना, हिन्दुओं के मंदिरों–मूर्तियों को तोड़ना, लूटना और वहाँ पर मस्जिदें बनाना–ये सब काम इस्लाम में बड़े पुण्य के माने जाते हैं। तेरह सौ साल हिन्दुओं ने यह भोगा है। हिन्दुओं को अब सावधान रहने की जरूरत है।

26. कब्र पूजा – हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाले मुसलमानों की कब्रों को हिन्दू ही पूजते हैं। अजमेर की दरगाह शरीफ में सूफी संत मुइनुद्दीन चिश्ती की कब्र है। ख्वाजा मुइनद्दीन चिश्ती 800 वर्ष पहले भारत आया था उसने यहां पर 700 हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था।

बहराईच, उत्तर प्रदेश के पास मसूद गजनी की मजार है। मसूद गजनी, सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ने और लूटने वाले महमूद गजनी का बेटा था। जून 1033 में मसूद ने भारत पर आक्रमण किया था, परन्तु वह मारा गया था। हिन्दू उसकी मजार से मन्नतें मांगते हैं।

महाराष्ट्र के एक गाँव में अलीशाह की मजार है। अलीशाह बड़ा अत्याचारी था। विवाह के पश्चात हिन्दू दुल्हनों को पहली रात अलीशाह के साथ गुजरानी पड़ती थी औरंगजेब का समय था और हिन्दू मजबूर थे। अब हिन्दू औरतें एस अलीशाह की कब्र को पूजती हैं।

27. प्राणीमात्र के दुख दूर करना ही मनुष्य का परम धर्म है। जो व्यक्ति समाज से अज्ञान, अन्याय और दरिद्रता दूर करता है वही ईश्वर भक्त है।

831 सैक्टर 10
पंचकूला, हरियाणा, 0172–4010679

thearyasamaj.org

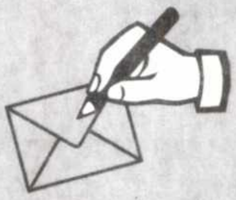

पत्र/कविता

मंगल उड़ान

भद्रं नो अपिवातय मनः।।

ऋ.10.20.1

अब तो दया करो दयावान।
मन की मंगल करो उड़ान।।

दिया आपने मन का परिचर।
चढ़ता परिचर मेरे सर पर।
करता भटक अमंगल दंगल,
सारी लोक लाज को तजकर।

चटकाता चारित्रिक चट्टान।
मन की मंगल करो उड़ान।।

आत्म बोध संकल्प हमारे।
करता उनको एक किनारे।
भाँति–भाँति सद्भाव विरोधी,
लाता कुटिल विकल्प कटारे।।

जिनसे रुक जाते उत्थान।
मन की मंगल करो उड़ान।।

सभी ओर से इसे बुलाओ।
भद्राचल की ओर चलाओ।
तजकर विषय वासना कल्मष
स्वस्ति सुभंग के फूल खिलाओ।

जिनसे हो जगका कल्याण।
मन की मंगल करो उड़ान।।

लड़कियों की संख्या में गिरावट हमारी कलुषित मानसिकता का प्रतीक है

नवरात्रों में बड़ी श्रद्धा से कन्या पूजन, दूसरी ओर उसकी गर्भ में बढ़ती हत्यायें! इस विरोधाभास व विडम्बना के मध्य जी रहा भारतीय समाज आज के वैज्ञानिक युग में भी अन्धविश्वास व पुत्रमोह से बुरी तरह ग्रसित है। उत्तराखण्ड में बेटियों की संख्या में गिरावट चिन्ताजनक स्थिति में पहुँच गई है। राष्ट्रीय बालिका दिवस, 24 जनवरी को चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग के आंकड़ों के अनुसार यहां 1 हजार लड़कों पर मात्र 866 बेटियां रह गई हैं, हम सब चुप!

पिथौरागढ में ''बेटी बचाओ'' अभियान चला रहे सामाजिक कार्यकर्ता डॉ. तारा सिंह से मेरी अनेक बार भेंट हुई तथा उनके साथ इस अभियान में जाने का मौका मिला तो बड़े कड़वे अनुभव भी हुये हैं। यह बात समझ से बाहर है लोगों की सोच अपनी बेटी के प्रति इतनी हिंसक क्यों होती जा रही है। यहां की मीडिया ने तारा सिंह की बात घर–घर पहुंचाई लेकिन मंजिल अभी कठिन तो है ही।

डॉ. तारा सिंह ने बताया कि सीमान्त पिथौरागढ़ कन्या भ्रूण हत्या के मामले में देश का सबसे संवेदनशील जनपद हो गया है।यहा बेटियाँ घटकर 766:1000 आ गई हैं यानि विगत 12 वर्षों में 136 बेटियां घटी है। उनका मानना है यदि बेटी को इसी तरह जन्म से रोका गया तो आगे भारी सामाजिक समस्यायें खड़ी हो जायेंगी। यहां के 14 इंटर कॉलिजों के अतिरिक्त उन्होंने दर्जनों गांवों में घूमकर भ्रूण हत्या के विरुद्ध एक वातावरण बनाने का प्रयास अवश्य किया है।

सन् 2011 की जनगणना के आंकड़े देते हुए डॉ. तारा सिंह ने कहा कि नैनीताल 891, चम्फावत 890 बागेश्वर 901, तथा शिक्षा व संस्कृति का केंद्र अल्मोड़ा 921, बेटियाँ प्रति हजार लड़कों पर आंकी गई हैं। प्रदेश की राजधानी देहरादून 890, टिहरीगढ़वाल 888, रूद्र प्रयाग 899, की स्थिति चिन्ताजनक है। उत्तरकाशी 959 तथा हरिद्वार में पहले की अपेक्षा कुछ सुधार के बाद 869 बेटियां आंकी गई हैं जो एक शुभ संकेत है।

डॉ. तारा सिंह कन्या भ्रूण हत्या जागरूकता अभियान के अतिरिक्त विभिन्न समाचार पत्रों में लेख भी लिखते आ रहे हैं। वे लोगों को समझा रहे हैं कि पड़ोसी नेपाल 1014, म्यामार 1048, श्रीलंका 1034, बांग्लादेश 978 में महिला जनसंख्या पहले की अपेक्षा बढ़ी है। दुर्भाग्य **'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का संदेश देने वाले भारत में ही लड़कियों की संख्या में '** गिरावट आना हमारी कलुषित मानसिकता का प्रतीक है।

डॉ. तारा सिंह का सुझाव है कि **विवाह संस्कार में सात वचनों के पश्चात् 8वां वचन नव दंपत्ति से कन्या भ्रूण हत्या से सदैव दूर रहने एवं बेटी के जन्म की तरह प्रसन्नता व्यक्त करने का भरवाना चाहिए।** आर्य समाज से इस सम्बन्ध में उन्हें रचनात्मक कदम की उम्मीद है। बेटी की हत्या का महापाप करने वालों से डॉ. तारा सिंह पूछते है कि क्या बेटी बिना बेटे का ज्नम संभव है? डॉ. स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी का आर्शीवाद व मार्गदर्शन उन्हें इस पुनीत कार्य में प्राप्त है।

आशा सौन (कवयित्री)

****

गुरुकुल ही तो आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचा रहे हैं वैदिक एवं आर्य ज्ञान

25 मई 20 14 के आर्य जगत् में प्रकाशित श्री भारतेन्दु सूद के पत्र *'जरूरत है' गुरुकुलों का पाठ्यक्रम बदला जाय'* के बारे में मेरा कहना है कि गुरुकुलों के पाठ्यक्रम में समयानुसार कुछ परिवर्त्तन से तो सहमत हुआ जा सकता है , लेकिन लेखक के इस बात से सहमत नहीं हुआ जा सकता है कि गुरुकुलों को 'आचार्यों के कब्जे से निकाल कर तथाकथित अच्छे शिक्षा का भूत सवार है। ये शिक्षाविद गुरूकुलों की क्या स्थिति कर सकते हैं इसे आसानी से समझा जा सकता है। इस बारे में श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा मुसलमानों के बारे में कही हुई यह बात ध्यान देने योग्य है, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'मुसलमान एक हाथ में कुरान एवं दूसरे हाथ में कम्प्यूटर रखे'। यह बात हम आर्यों के बारे में भी सही है। हमें भी गुरुकुलों में वैदिक पाठ्यक्रमों के साथ कम्प्यूटर आदि की शिक्षा का प्रावधान करना चाहिए। साथ ही अन्य आवश्यक विषय भी रखे जा सकते हैं। ये गुरुकुल ही तो हैं जो वैदिक एवं आर्य ज्ञान आने वाली पीढ़ियों को पहुँचा रहे हैं। ये अच्छे शिक्षाविद् तो वैदिक एवं आर्ष विद्या को अज्ञानता मानकर हटा ही देंगे। अंग्रेजी माध्यम के शिक्षक संस्थान कितने वैदिक विद्वान या वैदिक धर्मी पैदा कर रहे हैं यह तो हम सबों की आँखों के सामने है। अतः गुरुकुलों में कम्प्यूटर जैसी आधुनिक शिक्षा के बावजूद उनका संचालन आचार्यों के हाथ में होने चाहिए, तभी वे गुरुकुल रह पाएँगे, अन्यथा वे यीशु कुल हो जाएँगे।

सूर्यदेव चौधरी
झा.रा.आ. प्र. सभा, राँची

****

thearyasamaj.org

☞ पृष्ठ 6 का शेष

इन्द्र का सोमपान

हृद्यन्तरायुषि। ऋ.4–58–11) हिलोरे उत्पन्न करते है। ये अपनी माधुर्यपूर्ण धाराओं से हृदय में संगीत उत्पन्न करते हैं और उसके द्वारा उस जीवात्मा के शरीर को बढ़ाते अर्थात् सम्पुष्ट करते है। (**सम्यक् समयंचो महिषा अंहषत सिन्धेरूर्मावधि वेना अवीविपन्। मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियमिन्दुस्य तन्वमवीन्धन्।।** ऋ. 9–7–2)।

इन आनन्द बिन्दुओं का प्रभाव ऐसा है कि ये पवित्र बिन्दु को परिवेष्टित कर लेते है। अर्थात् इनसे युक्त व्यक्ति की वाणी में इनका माधुर्य स्पष्ट झलकता है। सर्वव्यापक परमेश्वर इनके द्वारा हृदय रूपी समुद्र को आच्छादित कर लेता है। परन्तु विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन्हें धारण और ग्रहण करने में केवल धैर्य और प्रज्ञा से युक्त जन समर्थ होते है। (**पवित्रवन्तः परि वाचमासते. ...महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारमम्।।** ऋ. 9–73–3) । ये अनन्द बिन्दू मन में जो सामान्यतया सहस्त्रोंधाराओं वाला है एक साथ शब्द करते हैं। इनकी वाणी मधुर है और ये मस्तिष्क के सुखमय स्थान पर विपर्यस्त नहीं होते। परन्तु फिर भी इनकी सुरक्षा आवश्यक है क्योंकि इस स्थिति की सुरक्षा आवश्यक है क्योंकि इस स्थिति को प्राप्त कर मनुष्य गर्वित हो कर आनन्द गवां सकता है। इसलिए इस आनन्द के अदृष्य गुप्तचर तीव्र गति से इनकी सब क्रियाओं को देखते रहते हैं। ये पलक नहीं झपकते और प्रत्येक पद पर तनिक स्खलन होते ही मानो पाश में बान्ध कर दण्डित करते है। इसलिए एक बार आनन्द की स्थिति प्राप्त होने पर साधक को पूर्ण सावधान रहना होता है। (**सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असचतः। अस्य स्पर्शान ननि भिषन्ति भूर्णयः पदे पदे पाशिनः सन्ति से तवः ।।** ऋ. 9–73–4)। ये आनन्द बिन्दु अपनी प्रज्ञाशक्ति से विस्तृत मास्तिष्क की विचार प्रणाली से उस कृष्णवर्ण अज्ञानान्धकार के आवरण को सहज ही हटा देते है। जिससे विशद्ध मन अथवा जीवात्मा द्वेष करता है अर्थात् निकट नहीं रखना चाहता (इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमस्क्नी भूमनो दिवस्परि।। ऋ. 9–73–5)। जो आनन्द बिन्दु अपने पुरातन परिमाण से इकट्ठे होकर एक साथ शब्द करते हैं वे प्रशंसा को नियत्रित करते हैं अर्थात् अन्य जनों से होनी वाली प्रशंसा से दिव्य आनन्द के उपभोक्ता को गर्वित होकर पथभ्रष्ट नहीं होने देते। ये वेग को मानने वाले है आर्थात् जीवन में वेग तथा स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं। जो पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को नहीं देखते और आत्मा की बात या हित की बात नहीं सुनते उन्हें वे छोड़ देते हैं। अर्थात् ऐसे व्यक्तियों को दिव्य आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। वे दुष्कृत जन बुरे कार्यों में उलझे रहते हैं और ऋतु के शाश्वत् नियम के मार्ग को पार नहीं करते। सत्कार्यो और सदाचरण से दिव्य आनन्द की प्राप्ति ऋत् है। यह ऐसा सत्य है जो सदा अटल है, शाश्वत् नियम है (प्रत्नान्मानादध्या समस्वरंछलोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः। अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां दृष्कृतः ऋ.9–73–6)।

सत्कार्य करने वाले क्रान्तदर्शी मनीषी जो आनन्द के पात्र है, वे सहस्त्रों धाराओं वाले विस्तृत मनरूपी छलने में वाणी को पवित्र करते है। उनके विचार कार्य और वाणी में एकरूपता होती है। (**सहस्त्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्तिकवयो मनीषिणः।** ऋ.9–73–7)। ऐसा ऋत् का रक्षक आनन्द का पात्र सत्कार्य करने वाले व्यक्ति अपने हृदय में तीनों पवित्रताओं मानसिक, वाचिक और कायिक को धारण किए रहता है। वह (वास्तविकता का) ज्ञाता सब लोकों तथा उनके तत्वों को जानता है, सब ओर से देखता है और नियमविहीन व्यक्ति है, दुष्ट, प्रीतिरहित जन है, उन्हें गढ़ढे मे धकेल देता है। अर्थात् पूर्ण उपेक्षा करता है। (**ऋतुस्य गोपा न दभाय सुक्रातुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे। विद्वान्त्स विश्ना भुवनामि पश्यत्यवाणुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।** वही 8)।यह दिव्यानन्द (सोम) समस्त संसार का राजा है क्योंकि यह मानो सबके मन में दीप्त है, सब इसका पान चाहते है। यह सब बुद्धिओं का पिता या पालक है। (**विश्वास्य राजा. .....पिता मतीनाम्** ऋ.9–76–4)। यह इन्दु अर्थात् प्रभावशाली दिव्य आनन्द को जीवात्मा के बल को प्रेरित करता है, कर्म के इच्छुक जनों से (कर्म द्वारा) प्रेरित किया जाता हुआ यह मनीषियों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। (**इन्दस्य शुम्मीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः।।** ऋ.09–77–2)। दूसरे शब्दों में इस दिव्य आनन्द प्राप्त करने के लिए जहां कर्म आवश्यक है वहीं मनीषा अर्थात् बुद्धि भी आवश्यक है। इस दिव्यानन्द से बल प्राप्त कर जीवात्मा इतनी शक्ति का अनुभव करता है जिससे पृथ्वी को ही कहीं से कहीं रख सकता हो (**हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह नेहवा कृवित्सोमस्यापामिति।।** ऋ.10–119–9)। इस दिव्यानन्द के बिन्दुओं का पान करने पर ये उसी प्रकार मुझे (अर्थात इसका उपयोग कने वाले को) उसी प्रकार शुभ मार्ग में प्ररित करते है जैसे तीव्रगति वाले घोड़े रथ को (**उन्मा पीता अयंषत रथमश्वा इवाशवः। वही** 3)। जिसने बार–बार इस आनन्द को पान किया है, उसके पास बुद्धि अथवा अन्य जनों द्वारा की जाने वाली स्तुति उसी प्रकार रहती जैसे है शब्द करती हुई गाय अपने प्रिय बछड़े के पास रहती है। (**उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम्।** वही 4)। इस दिव्य आनन्द का स्थान सुखमय मस्तिष्क है। यह शोभन गति वाला सोम वहीं पहुंचता है। उसके प्रिय जनों की वाणियां पहले के समान ही हो जाती हैं अर्थात् आनन्द प्राप्त करने वालों की वाणी में जो सत्य और माधुर्य पहले था वहीं अब भी है। (**नाके सुपर्णमुपपक्षिवांसं गिरो केनानामकृपन्त पूर्वीः** ऋ. 9–85–11)। जहां आनन्द को इन्द्र का हृदया सम्बन्धी और कलशों में रहने वाला बताया है, वहां निश्चय ही इन्द्र जीवात्मा है और कलश मानव शरीर है (**एन्त्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति।** ऋ. 9–84–4)। यह आनन्द श्री, शोभा, समृद्धि के लिए उत्पन्न हुआ है, श्री के लिए ही जाता है और स्तोताओं के लिए श्री तथा जीवन धारण करता है। उस श्री को आच्छादित करते हुए ही वे स्तोता अमृत्व को प्राप्त करते है। (**श्रीये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति। श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्...।।** ऋ. 9–94–4)। उस दिव्य आनन्द के प्रति अभिलाषा व्यक्त की गई है वह विशाल प्रकाश प्रदान करे और विद्वानों को तृप्त कर हर्षित करे (उरु ज्योतिः, कृणुहि मत्सि देवान् ऋ. 9–94–5)।

निश्चह ही इस उदात्त चरित्र वाला सोम कोई मादक दव्य कदापि नहीं हो सकता यद्यपि उसके उत्तम औषध, ईश्वर, ऐश्वर्य आदि अर्थ अनेक स्थलों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। सोम के दिव्य आनन्द होने की पुष्टि में अनेक अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

महादेव, सुन्दरनगर 174401 हि.प्र.

आर्य समाज ने चलाया परिन्डे बांधो अभियान

प्यासे पक्षियों के लिए परिन्डे बांधना हमारी धार्मिक व संस्कृति का हिस्सा –संत बलविन्दर सिंह

"गर्मी के दिनों में पेड़ों पर परिन्डे बांधकर उसमें नित्य पानी व दाना डालना हमारी धार्मिक व संस्कृति का हिस्सा है। हमें ऐसे कार्यों को करके आत्मिक सुख की अनुभूति होती है।"

उक्त विचार संत बाबा बलविन्दर सिंह जी जत्थेदार ने पेड़ों पर परिन्डे बांधते हुए व्यक्त किए।

आर्य समाज के जिला प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा ने कहा कि हमारी वैदिक संस्कृति में प्राणीमात्र के कल्याण की बात कही गई है। हमारे देश में लोग गायों को चारा, मछलियों को आटा, बंदरों को चने व फल देते हैं। यहां तक कि कुछ लोग चीटियों के बिलों पर आटा–चीनी डालकर धार्मिक अनुष्ठान करते हैं।

सिख धर्माचार्य, ज्ञानी गुरनाम सिंह ने कहा कि मैं पिछले 5 वर्षों से आर्य समाज के साथ परिन्डे बांधने से सक्रिय रहा हूं। ये पक्षियों के जीवन के लिए सर्वोत्तम कार्य है।

इस अवसर पर आर्य समाज विज्ञाननगर के प्रधान जे.एस.दुबे, आर्य विद्वान पं. रामदेव शर्मा उपस्थित थे

thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 18-19/6/2014
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

डी.ए.वी. के 128वें स्थापना दिवस पर रक्तदान शिविर एवं प्रतिभा सम्मान समारोह का आयोजन

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, भूपिन्द्रा रोड, पटियाला की इकाई 'आर्य युवा समाज' द्वारा 'डी.ए.वी स्थापना दिवस' बड़े ही हर्षोल्लास से मनाया गया। इस उपलक्ष्य में स्टेट बैंक ऑफ पटियाला के सहयोग से 'रक्तदान शिविर' लगाया गया; जिसमें शिक्षक–शिक्षिकाओं व बच्चों के अभिभावकों ने बढ़–चढ़ कर भाग लेते हुए '65' यूनिट रक्तदान किया। इस मानव कल्याणकारी प्रकल्प को स्थानीय राजेन्द्र अस्पताल के ब्लैड बैंक से आई डॉक्टर आराधना शर्मा व डॉ. सुखविन्दर की सहयोगी टीम ने सम्पन्न किया। इस अवसर पर श्री एस.के अग्रवाल (डी.जी. एम.,स्टेट बैंक ऑफ, पटियाला) मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। अपना आशीर्वाद देने विशेष रूप से पहुँचे श्री एस.के आहलुवालिया (पूर्व कमिशनर, पटियाला) ने इस कार्य की सराहना करते हुए कहा,''शिक्षा के साथ–साथ डी.ए.वी. संस्था समय–समय पर समाज सेवा के ऐसे कार्य करती रहती है, जो समाज–हितकरी हैं। समाज के कल्याण के लिए ऐसे कार्यों को जन आन्दोलन बनाने की जरुरत है।''

इस अवसर पर कक्षा बारहवीं व दसवीं के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को सम्मानित करने के लिए 'प्रतिभा सम्मान समरोह' भी आयोजित किया गया। सर्वप्रथम वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ हवन किया गया। मेधावी छात्रों, अभिभावकों व शिक्षकवृन्द ने परीक्षा में शानदार सफलता की प्राप्ति के लिए परपिता परमेश्वर का धन्यवाद प्रकट करते हुए यज्ञाग्नि में आहुतियाँ प्रदान कीं। श्री रविन्द्र तलवार (सचिव, डी.ए.वी. सी.एम.सी., नई दिल्ली) व उनकी धर्मपत्नी ने मुख्य अतिथि के रूप में पहुँच कर बच्चों को अपना शुभ आशीर्वाद दिया तथा अपने सम्बोधन में कहा कि इस शानदार सफलता के लिए विद्यार्थी, उनके अभिभावक, शिक्षक व प्राचार्य बधाई के पात्र हैं।

प्राचार्य एस. आर प्रभाकर ने मुख्य अतिथि का किया तथा कहा ''बच्चों की यह सफलता उनकी कठिन परिश्रम, दृढ़ संकल्प व उनके शिक्षकों के मार्गदर्शन का ही परिणाम है।''

आर्य युवा समाज, द्वारा सिक्ख गुरु परम्परा के पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव जी के शहीद दिवस के अवसर पर ठण्डे–मीठे पानी की छबील लगाई गई। भीष्ण गर्मी में हजारों लोगों ने इस छबील का आनन्द लिया।

डी.ए.वी गान व शान्ति पाठ के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

आर्य युवा समाज नागबनी, जम्मू ने किया जीवनोपयोगी वस्तुओं का वितरण

आर्य युवा समाज–जम्मू के तत्वावधान में महाराजा हरिसिंह एग्रिकल्चरल कॉलिजिएट नागबनी जम्मू के छात्रों द्वारा, जम्मू के अम्फाला स्थित वृद्धाश्रम में जरूरत की चीजों का वितरण कर गया। युवावर्ग को सामाजिक सरोकारों से जोड़ने एवं संस्कारवान बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु कुछ समय पूर्व विद्यालय के छात्रों एवं आर्य युवा समाज के सदस्यों ने वृद्धाश्रम जाकर वहाँ के निवासियों से उनकी तात्कालिक आवश्यकताओं के बारे में जानकारी हासिल की थी। इसी संदर्भ में आज नागबनी विद्यालय एवं आर्य युवा समाज के कुछ छात्र एवं अध्यापकगणों द्वारा वृद्धाश्रम जाकर वहां के वासियों को 50 चादरें वितरित की गईं। आर्य युवा समाज द्वारा समय–समय पर ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है जिसके द्वारा विद्यार्थियों को उनके सामाजिक दायित्वों का बोध कराया जाए।

डीआरवी डी.ए.वी. फिल्लौर में यज्ञ से दी शुभकामनायें

डीआरवी डी.ए.वी शताब्दी स्कूल, फिल्लौर में विद्यार्थियों की परीक्षाओं में सफलता की कामना के लिए वैदिक हवन का आयोजन किया गया। विद्यार्थियों ने प्रधानाचार्य श्री योगेश गँभीर एवं अध्यापकों के साथ हवन की पवित्र अग्नि में मंत्रोच्चारण के साथ आहुतियाँ

डालीं एवं परीक्षाओं में सफलता हेतु कामना की। प्रधानाचार्य श्री योगेश गंभीर ने विद्यार्थियों को जीवन में कठिन परिश्रम के साथ आगे बढ़ते हुए लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रेरित किया एवं अपनी शुभकामनाएँ दीं। हवन की सुगंध से सम्पूर्ण वातावरण पवित्र हो गया। बाद में सभी को प्रसाद वितरित किया गया।

डी.ए.वी ककराला ने मनाया धूम्र-निषेध दिवस

आज विश्व के देशों के सामने 'नशावृत्ति' एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आ रही है। जिसके फलस्वरूप लोगों में नशे के विरूद्ध चेतना लाने के लिए धूम्र–निषेध दिवस 31 मई को संसार भर में मनाया गया इसी उपलक्ष्य में डी.ए.वी. स्कूल ककराला में मई महीने को 'धूम्र–निषेध मास' के रूप में मनाया गया। जिसके अंतर्गत सी.बी.एस.ई. के आदेशानुसार स्लोगन राइटिंग, पोस्टर मेकिंग और कार्टून में किंग प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में स्कूल के विद्यार्थियों ने बढ़चढ़ कर भाग लिया। विद्यार्थियों ने अपने मन के विचारों और नशों से होने वाली हानियों को दर्शाया। स्कूल के प्रधानाचार्य श्री मनोज कुमार ने प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को सम्मानित किया। उन्होंने अपने भाषण के दौरान बच्चों को सचेत किया कि धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह बुद्धि और स्मरण शक्ति का विनाश करता है। इससे टी.बी. और कैंसर जैसी भयंकर बीमारियाँ पनपती हैं। आज की युवा पीढ़ी को चाहिए कि धूम्रपान न करने के लिए जन–चेतना आंदोलन छेड़ें ताकि इस समस्या का अंत हो सके।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**